इस मंतवेमें जितने प्रकारकी उपनिषद् छपी हैं वे सब नीचे लिखी हैं ॥

केनोपनिषद् भाषाटीकासहित =)

सामवेदीय तलवकारशाखीय भाषा टीका सरल मध्य-देशी हिन्दीभाषा में है जिसको पण्डित यमुनाशंकर ने राजशास्त्री मिहिरचन्द् की सहायता से अनुवाद किया इसमें भी पदों के अन्वय पूर्वक भावार्थ स्पष्ट किया है और ऐसा टीका किया है कि अल्पज्ञ मनुष्यों के भी समझ में आजावे ॥

ईशावास्य उपनिषद् भाषाटीकास०-)॥

पंचोली यमुनाशंकर नागर ब्राह्मणकी भाषा टीका स-हित—जिसमें मन्त्रों के अर्थ समझने के लिये पदोंके अन्वय किये गये और फिर पदार्थ की रीतिपर समझाकर भावार्थ स्पष्ट कियागया ॥

प्रश्नोपनिषद् भाषाटीकासहित ≡)

पंचोली यमुनाशंकर नागर ब्राह्मण की भाषा टीका सहित—इस में भी सब ऊपर के लिखेहुये अलंकारहैं शिष्य के पूछेहुये अच्छे प्रश्नों का उत्तर गुरुने बताकर ब्रह्मरूप लखाया है ॥

मांडूक्योपनिषद् भाषाटीकासहित ॥=)

पंचोली यमुनाशंकर नागर ब्राह्मण की भाषा टीका सहित—जिस में ॐकार स्वरूपका प्रतिपादन व ब्रह्म और

प्रार्थनापत्र ।

हे प्राणनाथ ! हे स्वामी ! हे जगत् के कर्त्ता ! आपके द्वार पर यह दुःखी, दीन, जीर्ण शरीर धारण कियेहुये उच्च स्वर से टेररहाहै. हे महाराज! अब प्रातःकाल है, आनन्दमय शयनशय्या से उठिये, अपने विशेषरूपको धारण कीजिये, इस शरीरसम्बन्धी दास को दुष्ट विषयी अहंकारी जीवों से बचाइये, उनके अन्तःकरणको शुद्ध कीजिये, इसके सत्य संकल्प धर्मयुक्त मनोरथको पूर्ण कीजिये. जो इससे शत्रुभाव रखते हैं, या अपने को श्रेष्ठ समुझकर और अभिमान में उन्मत्त होकर इसके प्रार्थना लोकहितार्थ को नहीं सुनते हैं उनके कर्णगोलक में ऐसा उपदेशध्वनि डालिये कि " हे मूर्खो ! जिसका सहायक कोई नहीं उसका सहायक मैं हूं. जो कुछ शक्ति तुम्हारे लिये है, सब मेरीदीहै, तुम सब

پرارتھناپتر

ہے پران ناتھ ہے سوامی ہے جگت کے کرتا آپکے دوار پر یہ دکھی دین جیرن شریر دھارن کئے ہوے اونچے سور سے ٹیر رہا ہے ہے مہاراج اب پراتہ کال ہے آنند مئی شین سجا سے اُٹھئے اپنے وشیش روپ کو دھارن کیجئے اس شریر سمبندھی داس کو دشٹ وشئی اہنکاری جیون سے بچائے اُنکے انتہکرن کو شدھ کیجئے اس کے ست سنکلپ دھرم یکت منورتھ کو پورن کیجئے جو اس سے شترو بھاو رکھتے ہیں یا اپنے کو شریشٹ سمجھ کر اور ابھیمان میں اُنمت ہوکر اسکے لوک ہتارتھ پرارتھنا کو نہیں سنتے ہیں اُنکے کرن گولک میں ایسا اُپدیش دھون ڈالئے کہ "ہے مورکھو جسکا سہایک کوئی نہیں اُسکا سہایک میں ہوں جو کچھ شکتی تمہارے پاس ہے وہ

जड़ असमर्थ अचेतन हो, एक
तृणको हिलानेको तुम्हारे में
सामर्थ्य नहीं है, मैं ही एक तुच्छ
पुरुषको अपनी शक्ति देकरके
भूमण्डलेश्वर करताहूं, और
जब अपनी शक्तिको खेंचले-
ताहूं, तब फिर वही नीच
नीच होकर द्वारद्वार घूमता
फिरता है, देवासुर संग्राम में
जब मैं अपनी शक्ति असुरोंको
देताहूं, तब उनकी जीत और
देवताओंकी हार होती है,
और जब देवताओंको अपनी
शक्ति देताहूं, तब उनकी जीत
और असुरों की हार होती है,
तुम सब अपने कृतकर्मपर
वृथा गाल मारतेहो, महामन्द
दुर्योधन, और दुष्ट दुश्शासन
का वृत्तान्त भलीप्रकार तुम
सबपर विदित है, जिससमय
कौरवों की सभामें मेरी अन-
न्यभक्ता द्रौपदीने सब ओर
से निराश होकर और अपने
चित्तको विषयों से खैंचकर
मेरेमें लगाया, मैं उसके दुःख
को न देखकर शीघ्रही उस
के पास गुप्तरूप से पहुँचकर
उसकी रक्षा की, और लाज

میرا ہی ہے تم سب جڑ اسمرتھ
اچیتن ہو ایک ترن ہلانے کو
تمہارے میں سامرتھیہ نہیں ہے
میں ہی ایک تچھ پرش کو اپنی
شکتی دیکر بھومنڈلیشور کرتا
ہوں اور جب اپنی شکتی کو
کھینچ لیتا ہوں تب پھر وہی
نیچ نیچ ہوکر دوار دوار گھومتا
پھرتا ہے دیواسور سنگرام میں جب
میں اپنی شکتی اسروں کو دیتا
ہوں تب اُنکی جیت اور دیوتاؤں
کی ہار ہوتی ہے اور جب دیوتاؤں
کو اپنی شکتی دیتا ہوں تو دیوتاؤں
کی جیت اور اسروں کی ہار ہوتی
ہے تم سب اپنے کرت کرم پر ورتھا
گال مارتے ہو مہامند دُرجودھن
اور دُشٹ دُشاسن کا برتانت
بھلی پرکار تم سب پر ودت ہے
جس سمے کوروں کی سبھا میں
میری اننّ بھکتا دروپدی نے سب
اور سے نراس ہوکر اور اپنے چت
کو وشیوں سے کھینچ کر میرے میں
لگایا میں اُسکے دُکھ کو نہ دیکھکر
شیگھرہی اُسکے پاس گپت روپ
سے پہنچکر اُسکی رکشا کی اور

रुक्मी, और उसके शत्रुओंको नीचा दिखाकर भयभीत किया, जिसप्रकार मैंने दुर्बल गज को बचायाहै और अभिमानी ग्राहको गर्द मर्द किया है वह सब तुमको विदितहै. हे अमानियो ! मेराही भय करके सूर्य. चन्द्र,तारेगण,और मृत्यु अपने अपने कार्योंमें अहर्निश जुड़ेहैं, क्या उनकी सामर्थ्य है, कि वे मेरी आज्ञाको उल्लंघनकरें एक पलकभंजनमें मैं उनको नाश करसक्ताहूं, और करोड़ों सूर्य चन्द्र तारे पृथ्वी आकाशादि को उत्पन्न करसक्ताहूं, मैंही सब भूतोंको अपने से उत्पन्न करके अपने मेंही धारण किये हुये उनको चेतनशक्ति देकर चैतन्य कररहाहूं. ये सब मेरी ही विभूती हैं, मैंही सबका अधिष्ठान चेतनहूं, मैंही सबका उत्पन्न और नाश करनेहारा समुद्र विषे लहरकी तरह हूं. जिसजगह मैं अपनी विशेष चेतनशक्ति को प्राणियों में समान अंश करताहूं. उसी काल वे सब ऐश्वर्यमान होकर पूज्यहो जाते हैं. हे

رکمی اور اُسکے شترووں کو نیچا دکھلاکر بھےبھیت کیا جس پرکار میں نے دُربل گج کو بچایا ہے اور ابھیمانی گراہ کو گرد مرد کیا ہے وہ سب تمکو ودت ہے ہے اگیانیوں میراہی بھے کرکے سورج چندر تارے اور مرتیو اپنے اپنے کارج میں اہرنش تتپر ہیں کیا اُنکی سامرتھ ہے کہ وے میری اگیان کو اُلنگھن کریں ایک پلک بھنجن میں میں اُنکو ناش کر سکتا ہوں اور کروڑوں سورج چندر تارے پرتھوی آکاش آدکوں چھن ماتر میں اُتپن کرسکتا ہوں میں سب بھوتوں کو اپنے سے اُتپن کرکے اپنے ماہیں دھارن کیئے ہوے اُنکو چیتن شکت دیکر چیتن کر رہا ہوں یہ سب میری ہی بِبھوتی ہیں میں ہی سب کا ادھشٹان چیتن ہوں میں ہی اُتپن اور ناش کرنے ہارا سمندر میں لہر کی طرح ہوں جس سمے میں اپنی ویشیش چیتن شکتی کو پرانیوں میں سمان انش کرتا ہوں تب وے سب چاہے مانیک ہو کر پوجنیہ ہوجاتے

अज्ञानियो ! जागो मेरेको नम-
स्कार करो, मेरे भक्तोंसे छेड़
छाड़ मत करो, नहीं तो शिशु
पालवत् तुम सब मेरे भक्तके
ब्रह्मयज्ञ में दण्ड पावोगे" । हे
दीनों के नाथ ! हे सत्यवादियों
के साथी ! हे धर्मरक्षक ! हे प्रभो !
हे साक्षी आत्मा ! जब वे दुष्टा-
त्मा इसप्रकार आपके उपदेश
ध्वनिको श्रवण करेंगे तो उन
को अवश्य आपके चरण क-
मलमें अनुराग और विषयोंसे
विराग होगा औरजब उनका
असुरभाव दूर होजावेगा, और
आपकी भक्तिके प्रतापका उन
के अन्तःकरण में अंकुर उपजै-
गा, तब इतर प्राणियोंको अप-
नेसे पृथक् न देखकर उनके
कार्यमें वैसेही पुरुषार्थ करेंगे
जैसे अपने कार्य में करते हैं
और संसार में यशको प्राप्त
होकर अन्त में परमशान्ति
गतिको प्राप्त होंगे, अहो मेरे
भाग्य ! कि मेरे कार्यकी सिद्धि
में उनका कल्याण आपकी
दयालुता करके होरहा है. हे
प्रभो ! आपके चरणकमल में
मेरे मनरूपी भ्रमर के रमण

ہوجاتے ہیں ہے اگیانیوں جاگو
میرے کو نمشکار کرو میرے بھکتوں
سے چھیڑ چھاڑ مت کرو نہیں تو
شیشپالوت تم سب میرے بھکت
کے برہمہ یگ میں ڈنڈ پاؤگے" ہے
دینوں کے ناتھ ہے ستبادیوں کے
ساتھی ہے دھرم رکچھک ہے پربھو
ہے ساکچھی آتما جب وے
دشٹ آتما اس پرکار آپکے
اوپدیش دھونی کو شرون کرینگے
تب اُنکو اوش آپکے چرن کمل
میں انوراگ اور بشیوں سے ویراگ
ہوگا اور جب اُنکا اسربھاو دور
ہوجاویگا اور آپکے بھکتی کے پرتاپ
کا اُنکو اُنکے انتہکرن میں اُپجیگا
تب اِتر پرانیونکو اپنے سے پرتھک
نہ دیکھکر اُنکے کارج میں ویسیہی
پرشارتھ کرینگے جیسے اپنے کارج
میں کرتے ہیں اور سنسار میں
جش کو پراپت ہوکر انت میں
پرم شانت گت کو پراپت ہونگے
اہو میرے بھاگ کہ میرے کارج کے
سدھی میں اُنکا کلیان آپکی
دیالتا کرکے ہورہا ہے پربھو آپکے
چرن کمل میں میرے من روپی

करने का विशेष कारण मेरी
धर्मयुक्त शुभमार्गी दोनों कन्या
यानें श्रीमति रघुवरदेवि और
श्रीमति हेमवतीदेवि हैं, उनके
विवाहमें विघ्नडालनेके निमित्त
दुराचारोंने अनेकप्रकारके उ-
पद्रवडाले, पर किसी की कुछ
न चली, मैं उन सबको साष्टां-
ग दण्डवत् करके धन्यवाद
देताहूं, ये मेरे बड़े प्रियमित्रहैं,
मैं उनके परम उपकार को
कभी न भूलूंगा, क्योंकि जब
उन करके मेरा मन क्लेशित
हुआ, तब सब ओरसे निराश
होकर, उस आपके चरणक-
मल की तरफ दौड़ा, जिसने
अपने भक्त अर्जुनके जय निमि-
त्त अपने विराट्रूप को दिखा
कर उसको भयरहित किया,
और उसके यशको संसार में
फैलाया है प्रभो! मेरी अब यही
प्रार्थना है कि मेरी दोनों
कन्या पतिव्रत को धारण किये
हुये सदैव शुभमार्ग में चल-
ती रहैं, और यावत् संसारी
विभूती हैं, उनको प्राप्त होकर
और भोगकर अन्त में आप

بیاہوں کے رمن کرنے کا وشیش کارن
میری دھرم یکت شبھ مارگی
دونوں کنیاں یعنی رگھوبر دیوی
اور ہیموتی دیوی ہیں اُنکے بیاہ
میں بگھن ڈالنے کے لیے دُشٹا
چاروں نے انیک پرکار کے اُپدرو
ڈالے پرنتو کسی کی کچھ نہ چلی
میں اُن سب کو ہاتھ جوڑ کر
ساشٹانگ ڈنڈوت کرکے دھن باد
دیتا ہوں وے میرے بڑے پریہ
متر ہیں میں اُنکے پرم اپکار کو نہ
بھولونگا کیونکہ جب اُن کرکے میرا
من کلیشت ہوا تب سب اور سے
نراس ہوکر آپکے چرن کمل کے
طرف دوڑا کہ جس نے اپنے بھگت
ارجن کے جے نمت اپنے براٹ روپ
کو دکھلاکر اُسکو بھے رہت کیا اور
اُسکے جس کو سنسار میں بڑھایا
ہے پربھو اب میری یہی پرارتھنا
ہے کہ میری دونوں کنیاں
پتبرت کو دھارن کئے ہوئے سدیو
شبھ مارگ میں چلتی رہیں اور
یاوت سنساری وبھوتی ہیں اُن
سب کو پراپت ہوکر اور بھوگ

के सायुज्यभक्तिको प्राप्तहों ॥

ॐहरिः ॐहरिः ॐहरिः ॥

आपका चरणसेवक ज़ालिमसिंह आत्मज लाला शिवदयालसिंह ग्राम अकबरपुर ज़िलअ फ़ैज़ाबाद हेड पोस्टमास्टर लखनऊ ॥

کہ انت مین ایسے سایُوج بھکتی کو پراپت ہون—

اونگ ہری اونگ ہری اونگ ہری

آپنا چرن سیوک ظالم سنگھ آتمج شیودیال سنگھ گرام اکبرپور ضلع فیض آباد ہیڈ پوسٹ ماسٹر ڈاکخانہ لکھنؤ—

टीकाविधि।

इस टीकामें पहिले मूलमन्त्र है फिर पदच्छेद है फिर वाम हस्त की ओर संस्कृत अन्वय दियाहै और दक्षिण हस्तकी ओर पदार्थ लिखाहै यदि वाम तरफ का लिखाहुआ ऊपरसे नीचेतक पढ़ा जावै तो उत्तम संस्कृत अन्वय मिलैगा और यदि दक्षिण की तरफ वाला पढ़ाजावै तो पूरा अर्थ मन्त्रका मध्यदेशी भाषा में मिलैगा और यदि वायें तरफसे दहिने तरफको पढ़ा जावै तो हर संस्कृत पद का अर्थ भाषामें मिलैगा जहां तक होसकाहै प्रत्येक संस्कृत पद का अर्थ विभक्तिके अनुसार लिखा गया है इस टीकाके पढ़ने से संस्कृत विद्याकाभी अभ्यास होगा इस टीका में मूलका कोई शब्द छूटने नहीं पाया है और मन्त्रका पूरापूरा अर्थ उसके शब्दोंही से सिद्ध कियागया है अपनी कल्पना कुछ नहीं कीगई है हां कहीं कहीं ऊपरसे संस्कृतपद मन्त्रका अर्थ स्पष्ट करने के लिये रक्खागया है और उस पदके प्रथम यह + चिह्न लगा दिया गया है

ताकि पाठक जनोंको विदित होजाय कि यह पद मूलका नहीं है ॥

भावार्थ इसका विस्तार और युक्ति सहित है इसके पढ़ने से आत्माका यथार्थ बोध होता है और मनभी नहीं घबड़ाता है जो कोई इसको एकबार भी आद्योपान्त पढ़ जायगा उसका कल्याण अवश्य होगा इसमें कोई संशय नहीं ॥

सज्जनों के चरणकमल में प्रार्थना है कि जहां कहीं अशुद्धताहो उससे टीकाकर्त्ता को सूचना करें कि अशुद्धता दूर होजावै ॥

जालिमसिंह.

कृष्णार्पण ॥

Dedicated to Lord Krishna. He has been a solace to my life and will be a solace to my soul after death.

ZALIM SINGH.

श्रीगणेशाय नमः

रामगीता सटीक ॥

श्रीईश्वरउवाच ॥

मूलम् ॥

ततोजगन्मंगलमंगलात्मना
विधायरामायणकीर्त्तिमुत्तमाम् ॥
चचार पूर्वाचरितं रघूत्तमो
राजर्षिवर्य्यैरपिसेवितंयथा ॥ १ ॥

पदच्छेदः ॥

ततः जगन्मंगलमंगलात्मना विधाय रामायणकीर्त्तिम् उत्तमाम् चचार पूर्वाचरितम् रघूत्तमः राजर्षिवर्य्यैः अपि सेवितम् यथा ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
ततः	तदनंतर	विधाय	प्रकटकरके
जगन्मंगलमंगलात्मना	जगत्के मंगलको मंगलकरनेहारे	यथा	जिसप्रकार
रघूत्तमः	रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी	पूर्वाचरितम्	पूर्वाचरित धर्म
उत्तमाम्	उत्कृष्ट	राजर्षिवर्यैः	श्रेष्ठराजऋषियों करके
रामायणकीर्तिम्	अपनेव्यवहारोंको	सेवितम्	सेवनकिया गया था
		तथाअपि	वैसेही
		चचार	करते भये

॥ भावार्थ ॥

अध्यात्मरामायण में महादेवजीने पार्वती के प्रति श्रीरामचन्द्रजी के जन्म के चरित्रों का, उनके वनके व्यवहारों का, सीताहरण और रावण के वधहोने का सम्पूर्ण हाल सविस्तार वर्णन किया, और उत्तरकाण्ड में राम लक्ष्मणजीका जो संवाद है, उसको पार्वतीजीके प्रति सुनाते हैं ॥

श्रीमहादेव उवाच ॥

श्रीमहादेवजी कहते हैं, हे पार्वति ! जब लक्ष्मण जी सीताजी को वाल्मीकिमुनिके आश्रमपर छोड़आये, तब उसके पश्चात्, जगत् के मंगल के मंगल करने हारे, श्रीरामजी अपनी निर्मल कीर्तिको, संसार में वाल्मीक्यादि रामायणों द्वारा स्थापन करके, पूर्वले इक्ष्वाकु आदि राजऋषियों की तरह, शुभ आचरणको करतेभये ॥ १ ॥

मूलम् ॥

सौमित्रिणा पृष्ट उदारबुद्धिना
रामः कथाः प्राह पुरातनीः शुभाः ॥
राज्ञःप्रमत्तस्यनृगस्यशापतो
द्विजस्यतिर्य्यक्त्वमथाऽऽहराघवः२॥

पदच्छेदः ॥

सौमित्रिणा पृष्टः उदारबुद्धिना रामः कथाः प्राह पुरातनीः शुभाः राज्ञः प्रमत्तस्य नृगस्य शापतः द्विजस्य तिर्यक्त्वम् अथ आह राघवः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
उदारबुद्धिना	उदार बुद्धि	प्राह	कहते भये
सौमित्रिणा	लक्ष्मण करके	अथ	तदनन्तर
पृष्टः	प्रश्न किये गये	द्विजस्य	ब्राह्मणके
रामः	श्रीरामचन्द्रजी	शापतः	शापसे प्राप्त हुई
पुरातनीः	पुरानी	प्रमत्तस्य	उन्मत्त
शुभाः	शुभ	राज्ञः	राजा
कथाः	कथाओंको	नृगस्य	नृगकी
		तिर्य्यक्त्वम्	तिर्य्यग्योनि की कथाको
		आह	कहतेभये

भावार्थ॥

तदनन्तर उदारबुद्धि जो लक्ष्मणजी हैं, उनके पूंछने पर श्रीरामजी, पुरातनी श्रेष्ठ राजों की धर्मसंबन्धी कथाओंको कहते भये, और जिसप्रकार नृगराजा ब्राह्मणों के शाप से गिरगिटयोनि को प्राप्त हुये थे, उस को भी कहते भये, राजा नृगको शाप इस तरह से लगा था, राजा नृग बड़े धर्मात्मा, और दानीथे, अनेक

गौवों को नित्य दान करतेथे, एक दिन उन्होंने एक ब्राह्मण को बहुत गौवों का दान दिया, उन सब को वह जब अपने घर में लेगया, तब उनमें से एक गौ भागकर राजा के घर आकर और गौवों में मिलगई, दूसरे दिन न जानकर राजाने और गौवों के साथ उस गौ को दूसरे ब्राह्मण के प्रति दान करदिया, वह जब लेगया, तब पहलेवाले ब्राह्मणने उस गौ को पहचान कर कहा, यह मेरी है, दूसरे ने कहा, मेरे को राजा ने इस गौका दान दिया है, दोनों झगड़ते हुये राजा के पास आये, राजाने कहा, हे ब्राह्मण! इस एक गौके बदले मेरे से लाख गौ और लेले, इसको छोड़ दे, दोनों में से किसी ने भी न माना, और क्रोधसे राजा को शाप देदिया, जा तू गिरगिट योनि को प्राप्त हो, राजा गिरगिट होगया ॥ २ ॥

मूलम् ॥

कदाचिदेकान्तमुपस्थितं प्रभुं
रामं रमालालितपादपंकजम् ॥
सौमित्रिरासादितशुद्धभावनः
प्रणम्य भक्त्या विनयान्वितोऽब्रवीत् ३

पदच्छेदः॥

कदाचित् एकान्तम् उपस्थितम् प्रभुम् रामम् रमालालितपादपंकजम् सौमित्रिः आसादितशुद्धभावनः प्रणम्य भक्त्या विनयान्वितः अब्रवीत्॥

अन्वयः	शब्दार्थ
कदाचित्	एकसमय
एकान्तम्	एकान्त विषे
उपस्थितम्	बैठेहुये
रमालालितपादपंकजम्	लक्ष्मी करके सेवित हैं चरणकमल जिनके ऐसे
प्रभुम्	प्रभु
रामम्	रामचन्द्र से
आसादितशुद्धभावनः	प्राप्तकी है शुद्ध भावना जिसने ऐसे
सौमित्रिः	लक्ष्मण जी
विनयान्वितः	विनय संयुक्त
भक्त्या	भक्तिसे
प्रणम्य	प्रणाम करके
अब्रवीत्	बोलतेभये

भावार्थ ॥

एक समय एकान्त देश विषे स्थित श्रीरामजी से जो जगत् के स्वामी हैं, और जिनके चरण कमल लक्ष्मीरूपी जानकी करके सेवित हैं, लक्ष्मण जी, जिन्हों ने रामजी की सेवा करके अपने अन्तःकरण को शुद्ध किया है, श्रद्धापूर्वक नम्रता से पूंछतेभये ॥

नोट—जानकी जी रामचन्द्रजीके पास नहीं थीं वह वाल्मीकिमुनि के आश्रम में थीं परन्तु मन उनका रामजी के चरणकमल में लगाथा मनसे उन चरणों की सेवा करती थीं ॥३॥

मूलम् ॥

त्वंशुद्धबोधोसिहिसर्वदेहिना
मात्माऽस्यधीशोसिनिराकृतिःस्वयम्
प्रतीयसे ज्ञानदृशामथापिते
पादाब्जभृंगाहितसंगसंगिनाम् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ॥

त्वम् शुद्धबोधः असि हि सर्वदेहिनाम् आत्मा असि अधीशः असि निराकृतिः

स्वयम् प्रतीयसे ज्ञानदृशाम् अथ अपि ते पादाब्जभृंगाहितसंगसंगिनाम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
त्वम्	आप
शुद्धबोधः	शुद्धज्ञान स्वरूप
असि	हो
सर्वदेहिनाम्	सर्वदेहधारियों के
आत्मा	आत्मा
असि	हो
अधीशः	स्वामी
असि	हो
अथअपि	और
ते	आपके
पादाब्जभृंगाहितसंगसंगिनाम्	चरणकमल मेंभँवरसमान लगायाहै चित्तकोजिन्होंने और आहित जाना है विषय संगियों का संग जिन्हों ने ऐसे
ज्ञानदृशाम्	ज्ञानदृष्टिवालेपुरुषों को
स्वयम्	आप
निराकृतिः	निराकार
प्रतीयसे	भासते हो

भावार्थ ॥

लक्ष्मणउवाच ॥

लक्ष्मणजी कहते हैं हे प्रभो ! आप शुद्ध ज्ञान स्वरूप हो, और आपही निश्चय करके सम्पूर्ण देह-धारियों के आत्माहो, अर्थात् सब में परिपूर्ण हो करके स्थित हो, आपही सब के प्रेरकहो, आपही निराकृति हो, अर्थात् वास्तव से आप आकार रहित हो, और ज्ञानियों को आप ऐसेही प्रतीत होते हो, अज्ञानी आप के यथार्थरूप को नहीं जानते हैं, जिन ज्ञानियों का मन भ्रमर होकर आप के चरण कमल का रस लेरहाहै, और विषय को अहित जान के विषवत् त्याग दिया है, वही आप के वास्तविक स्वरूप को जान सक्ता है ॥ ४ ॥

मूलम् ॥

अहं प्रपन्नोस्मि पदाम्बुजं प्रभो
भवापवर्गं तव योगिभावितम् ॥
यथाऽञ्जसाऽज्ञानमपारवारिधिं
सुखंतरिष्यामितथाऽनुशाधिमाम् ५

पदच्छेदः ॥

अहम् प्रपन्नः अस्मि पदाम्बुजम् प्रभो भवापवर्गम् तव योगिभावितम्, यथा अञ्जसा अज्ञानम् अपारवारिधिम् सुखम् तरिष्यामि तथा अनुशाधि माम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
प्रभो	हे स्वामी
योगिभावितम्	योगियों से अनुभव कियेगये
भवाऽपवर्गम्	संसार निवर्तक
तव	आपके
पदाम्बुजम्	चरण कमलके
प्रपन्नः	शरणहुआ
अस्मिअहम्	हूं मैं
यथा	जिसप्रकार
अञ्जसा	शीघ्रही
अपारवारिधिम्	अपार समुद्र रूप
अज्ञानम्	अज्ञान को
सुखम्	सुखपूर्वक
तरिष्यामि	तरूं
तथा	वैसाही
माम्	मुझको
अनुशाधि	उपदेश करिये

भावार्थ ॥

हे प्रभो ! मैं आप के चरणकमलों की शरण को प्राप्त हुआहूं, आप के चरणकमल को योगीजन सदैव काल ध्यान करते हैं, और वे संसार से भक्त जनों को छुड़ानेवाले हैं, हे प्रभो ! जिसप्रकार मैं अज्ञानरूपी महा समुद्र से सुखपूर्वक तरजाऊं, आप कृपा करके उपदेश दीजिये ॥ ५ ॥

मूलम् ॥

श्रुत्वाऽथसौमित्रिवचोखिलंतदा
प्राह प्रपन्नार्तिहरः प्रसन्नधीः ॥
विज्ञानमज्ञानतमोपशान्तये
श्रुतिप्रपन्नं क्षितिपालभूषणम् ६ ॥

पदच्छेदः ॥

श्रुत्वा अथ सौमित्रिवचः अखिलम् तदा प्राह प्रपन्नार्तिहरः प्रसन्नधीः विज्ञानम् अज्ञानतमोपशान्तये श्रुतिप्रपन्नम् क्षितिपालभूषणम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अथ	=इसप्रकार	श्रुतिंप्रपन्नम्	=श्रुति करके प्रतिपाद्य
अखिलम्	=सम्पूरण	क्षितिपालभूषणम्	=राजाओं के भूषण ऐसे
सौमित्रिवचः	=लक्ष्मणके वचनको	विज्ञानम्	=विज्ञान को
श्रुत्वा	=सुनकरके	अज्ञानतमोपशांतये	=अज्ञान-रूपी अंधकार के नाश के लिये
तदा	=तब	प्राह	=कहते भये
प्रपन्नार्तिहरः	=शरणागत के दुःख के हरनेवाले		
प्रसन्नधीः	=प्रसन्नचित्त श्रीरामचन्द्रजी		

भावार्थ ॥

लक्ष्मणजी के संपूर्ण वचनको श्रवण करके श्रीरामजी कहते हैं, हे लक्ष्मणजी! आत्मज्ञानही अज्ञानरूपी तमके नाश करने में सामर्थ्य है ॥ नान्यःपंथा विद्यतेऽयनाय ॥ आत्मज्ञानके सिवाय और कोई भी मार्ग मोक्ष के लिये विद्यमान नहीं है, इस प्रकार अ-

नेक श्रुतियों करके प्रतिपाद्य जो ज्ञानहै, वही संसार के हेतु अज्ञान का नाशक है, श्रीरामजी जो सब राजोंके शिरके भूषण हैं, अर्थात् संपूर्ण राजालोक जिन की वन्दना करते हैं, और जो शरणागतकी पीड़ा को हरनेवाले हैं, लक्ष्मणजी के प्रति आत्मज्ञानके उपदेशको करते हैं ॥ ६ ॥

मूलम् ॥

आदौस्ववर्णाश्रमवर्णिताःक्रियाः
कृत्वा समासादितशुद्धमानसः ॥
समाप्य तत्पूर्वमुपात्तसाधनः
समाश्रयेत्सद्गुरुमात्मलब्धये७॥

पदच्छेदः ॥

आदौ स्ववर्णाश्रमवर्णिताः क्रियाः कृत्वा समासादितशुद्धमानसः समाप्य तत्पूर्वम् उपात्तसाधनः समाश्रयेत् सद्गुरुम् आत्मलब्धये ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
आदौ	पहले
स्ववर्णाश्रमवर्णिताः	अपने वर्णाश्रमके प्रतिपाद्य
क्रियाः	क्रियोंको
कृत्वा	करके
समासादितशुद्धमानसः	प्राप्तकिया है शुद्धअन्तःकरण जिसने
च	और
तत्	फिर

अन्वयः	शब्दार्थ
पूर्वम्	उसके पीछे अन्तरंग कर्म को
समाप्य	समाप्तकरके
उपात्तसाधनः	साधन संपन्न होता हुआ है जो सो
आत्मलब्धये	आत्मज्ञान की प्राप्ति के निमित्त
सद्गुरुम्	सद्गुरु को
समाश्रयेत्	आश्रयण करै

भावार्थ॥

श्रीरामजी कहते हैं हे लक्ष्मणजी! मोक्षकी इच्छा वाला जो पुरुष है, वह अन्तःकरण की शुद्धि के लिये पहले अपने वर्णाश्रम के जो कर्म हैं, उनको निष्काम होकर अन्तःकरण की शुद्धि के लिये करै, । निष्काम कर्म करते २ जब अन्तःकरण शुद्ध होजावै, तब

उनका त्याग करके पश्चात् अन्तरंग साधन जो शमदमादिक हैं, उनको आश्रयण करै, तदनन्तर आत्मवित् गुरु की शरणको प्राप्त होवै, ऐसी वेदकी आज्ञा है। परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणोनिर्वेदमायान्नास्त्यकृतःकृतेन सगुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियंब्रह्मनिष्ठम् ॥ १ ॥ कर्मों करके उत्पन्न किये जो लोकहैं, उनको अनित्य जानकर ब्राह्मण याने द्विजातीय—वैराग्य को प्राप्त होवै, क्योंकि अकृत जो मोक्ष है सो कृत याने कर्मों करके नहीं होता है, इसलिये जो मुमुक्षु है, सो गुरु के समीप जावै, जो गुरु ब्रह्मश्रोत्र हो, और ब्रह्मनेष्ठिहो वही आत्मवित् कहा जाता है, उसी से आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है ॥ ७ ॥

मूलम् ॥

क्रियाशरीरोद्भवहेतुरादृता
प्रियाप्रियौतौभवतःसुरागिणः ॥
धर्मेतरौ तत्र पुनः शरीरकं
पुनःक्रियाचक्रवदीर्यतेभवः ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ॥

क्रिया शरीरोद्भवहेतुः आदृता प्रिया-

प्रियौ तौ भवतः सुरागिणः धर्मेतरौ तत्र पुनः शरीरकम् पुनः क्रिया चक्रवत् ईर्यते भवः॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अहोल-	हेलक्ष्मण!	तत्र	तिस प्रिय अप्रिय विषे
क्ष्मण			
क्रिया	यज्ञादिकर्म	धर्मेतरौ	धर्म और अधर्मकी प्रवृत्ति होती है
शरीरोद्भवहेतुः	शरीरकी उत्पत्तिका कारण	च	और
आहृता	मानागयाहै	पुनः	फिर
सुरागिणः	रागी पुरुषको	क्रिया	क्रिया
तौ	दोनों	इति	इसप्रकार
प्रियाप्रियौ	प्रिय और अप्रियभाव	भव	संसार
		चक्रवत्	चक्र के समान
भवतः	प्राप्तहोते हैं	ईर्यते	चलाकरताहै

भावार्थ॥

पूर्वले वाक्य करके श्रीरामचन्द्रजीने यह वार्ता

कही है कि आत्मवित् गुरु के समीप जाने से और उसके प्रति अपने अभिप्राय के कहने से फिर उनकी कृपा से आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है तिस आत्म-ज्ञान करके जन्ममरणरूपी संसारचक्र की निवृत्ति होती है अब इस वाक्य करके संसारचक्रको दिखाते हैं ॥ हे लक्ष्मणजी ! पूर्वजन्ममें आदर और श्रद्धापूर्वक किया हुआ जो शुभ अथवा अशुभ कर्म है सो इस जन्मके शरीरकी उत्पत्ति का कारण है और इस वर्त्त-मान जन्ममें भी विषयों में रागवाले पुरुषोंकोही शुभ अशुभ कर्म प्रिय और अप्रिय भी होते हैं इस जन्ममें भी वह विषयभोगों की इच्छा करके फिर भी दोनों प्रकार के कर्मोंकोही करताहै फिर शरीरकी उत्पत्ति उन कर्मों से होती है और शरीर से फिर कर्म होतेहैं इसी तरह फिर कर्म फिर शरीर घटीयन्त्रकी तरह यह चक्र चलाही जाता है इस चक्र के चलने का नामही संसार है इस चक्र की समाप्ति विना आत्म-ज्ञान के और किसी प्रकार से नहीं होती है ॥ ८ ॥

मूलम् ॥

अज्ञानमेवास्य हि मूलकारणम्
तद्धानमेवात्र विधौ विधीयते ॥

विद्यैव तन्नाशविधौ पटीयसी
न कर्म तज्जं सविरोधमीरितम् ६ ॥

पदच्छेदः ॥

अज्ञानम् एव अस्य हि मूलकारणम् तद्धानम् एव अत्र विधौ विधीयते विद्या एव तन्नाशविधौ पटीयसी न कर्म तज्जम् सविरोधम् ईरितम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
हि	निश्चय करके
अस्य	इससंसार का
अज्ञानम् एव	अज्ञानही
मूलकारणम्	आदिकारणहै
च	और
अत्र	ब्रह्मविद्याके
विधौ	विधान में
तद्धानम् एव	तिसअज्ञान कात्यागही
विधीयते	विधानकिया जाताहै
तन्नाश विधौ	तिसकेनाशकरने के विषे
विद्याएव	ब्रह्मविद्याही
पटीयसी	समर्थ है
न कर्म	कर्म नहीं है

हि=क्योंकि	सविरोधम्=ब्रह्मविद्या
तज्जम्=अज्ञानजन्य	काविरोधी
कर्म	ईरितम्=कहागयाहै

भावार्थ ॥

हे लक्ष्मणजी ! इस संसारचक्रका मूलकारण अज्ञानही है उसकी निवृत्ति याने नाशमें आत्मज्ञानही समर्थ है कर्म नहीं क्योंकि जितने कर्म हैं वे सब अज्ञानके कार्य हैं जो जिसका कार्य है वह अपने कारण के नाश करने में समर्थ नहीं होताहै जैसे घट मृत्तिका का कार्य है वह मृत्तिकाके नाश करने में समर्थ नहीं है जिन दो पदार्थों का परस्पर विरोध होता है वेही एक दूसरे के नाश करने में समर्थ होते हैं जिनका परस्पर विरोध नहीं है वे एक दूसरेके नाश करने में सामर्थ्य नहीं रखते हैं जैसे घटका विरोध अपने कारण मृत्तिका से नहीं है तैसेही उसका याने अज्ञान और कर्म का विरोध भी नहीं है इसी वास्ते कर्म अज्ञान का नाशक नहीं है तम प्रकाश का परस्पर विरोध है इस वास्ते प्रकाश तमका नाशक है तैसे ज्ञान अज्ञान का भी परस्पर विरोध है इसी कारण ज्ञानही अज्ञान का नाशक है ॥ प्र० ॥ हे वादिन् !

तुम्हारे मतमें ज्ञानस्वरूप आत्मा और अज्ञान दोनों अनादि हैं और चेतन के आश्रित अज्ञान को माना है यह कैसे होसक्ता है यातो अज्ञान चेतन के आश्रित नहीं है या दोनों का परस्पर विरोध नहीं है यदि विरोध मानोगे तब तम प्रकाश की तरह आश्रय आश्रितभाव नहीं बनैगा यदि विरोध नहीं मानोगे तब ज्ञान करके अज्ञान की निवृत्ति नहीं होगी ॥ उत्तर ॥ अग्नि दो प्रकारकी है एक सामान्य अग्नि दूसरी विशेष अग्नि जो अग्नि कि सब काष्ठादिकों में सूक्ष्मरूप करके स्थित है वह सामान्य अग्नि है वह किसी भी काष्ठादिकों का विरोधी नहीं किन्तु सब का साधक है सूर्य्य का सामान्य तेज सब पदार्थों पर बराबर पड़ता है परन्तु वह बाधक किसी का भी नहीं होता है किन्तु सबका साधक होता है क्योंकि सूर्य्य के प्रकाशकी सहायता करके चक्षु रूपादिकों को देखता है इसलिये सूर्य्य का तेज भी सब पदार्थों का साधक है बाधक नहीं है पर वही तेज आतशी शीशे में पड़ाहुआ विशेषभाव को प्राप्त होकर वस्त्रादिकों को जला देता है दार्ष्टान्त में दो प्रकार का चेतन है एक सामान्यचेतन है दूसरा विशेषचेतन है व्यापक चेतन का नाम सामान्य चेतन है वह किसी का भी

बाधक नहीं है किंतु सबका साधक है अज्ञानका भी साधक है क्योंकि अज्ञानके साथ भी उसका विरोध नहीं है इसीसे वह अज्ञान का नाशक नहीं है परंतु ब्रह्माकारवृत्तिमें प्रतिबिम्बित जो विशेष चेतनहै वही अज्ञान का बाधक याने नाशक है जैसे प्रज्वलित विशेष अग्नि काष्ठों को नाश करदेती है तैसे विशेष चेतन भी सहित कार्य्य के अज्ञान को नाश करदेता है वही आत्मज्ञान कहलाता है उसी करके जन्म मरणरूपी संसारचक्रकी निवृत्ति होती है॥ ९ ॥

मूलम् ॥

नाज्ञानहानिर्न चरागसंक्षयो
भवेत्ततः कर्म सदोषमुद्भवेत् ॥
ततः पुनः संसृतिरप्यवारिता
तस्माद् बुधोज्ञानविचारवान्भवेत् १०

पदच्छेदः ॥

न अज्ञानहानिः न च रागसंक्षयः भवेत् ततः कर्म सदोषम् उद्भवेत् ततः पुनः संसृतिः अपि अवारिता तस्मात् बुधः ज्ञानविचारवान् भवेत् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
ततः	=अज्ञानजन्यकर्मसे	ततः	=तिसकर्मसे
अज्ञानहानिः	=अज्ञानकानाश	पुनः	=फिर
नभवेत्	=नहींहोताहै	संसृतिः	=जन्म
च	=और	अपि	=निश्चयकरके
न	=न	अवारिता	=होताहै
रागसंक्षयः	=रागद्वेषकानाश	तस्मात्	=इसलिये
भवेत्	=होताहै	बुधः	=बुद्धिमान्पुरुष
ततः	=तिसकर्मसे	ज्ञानविचारवान्	=ब्रह्मविद्याका विचारकरनेवाला
सदोषम्	=दोषसहितकर्मही	भवेत्	=होवै
उद्भवेत	=उत्पन्नहोताहै		

भावार्थ॥

श्रीरामजी कहते हैं हे लक्ष्मणजी! कर्मों से अज्ञान

का नाश नहीं होता है और विषयों में जो राग है उसका भी नाश कर्मों के करने से नहीं होता है किन्तु कामना सहित कर्मों के करनेसे विषयोंमें राग बढ़ता है उसी से फिर विषयों की प्राप्तिके लोभ करके जीव फिर कर्मोंकोही करता है और तिनके फिर करने से फिर जन्ममरणरूपी संसारकोही प्राप्त होता है कर्मों करके संसारचक्र कदापि नहीं छूटता है सो कहा भी है ॥ कर्मणा बध्यते जंतुर्विद्ययाच विमुच्यते तस्मात् कर्म न कुर्वन्तियतयःपारदर्शिनः ॥ कर्मों करके जीव सदैवकाल बन्धायमान रहता है और आत्मविद्या करके मुक्त होता है इसलिये यति आत्मदर्शी कर्म्मों को नहीं करते हैं ॥१॥ हे लक्ष्मणजी! इसी वास्ते ज्ञानवान् लोक कर्म का त्याग करके आत्मविचारमेंही रहते हैं ॥ १० ॥

मूलम् ॥

ननु क्रिया वेदमुखेन चोदिता
तथैव विद्या पुरुषार्थसाधनम् ॥
कर्तव्यता प्राणभृतःप्रचोदिता
विद्यासहायत्वमुपैति सा पुनः ११ ॥

पदच्छेदः॥

ननु क्रिया वेदमुखेन चोदिता तथा एव विद्या पुरुषार्थसाधनम् कर्त्तव्यता प्राणभृतः प्रचोदिता विद्यासहायत्वम् उपैति सा पुनः॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
ननु	लक्ष्मणकहते भये		योंका
क्रिया	क्रियाभी	कर्त्तव्यता	क्रियाभीमोक्षकासाधन
वेदमुखेन	वेदकेमुखसे	एव	ही
चोदिता	कहीगई है और	प्रचोदिता	कहीगई है
यथा	जैसे	पुनः	और
विद्या	ब्रह्मविद्या	सा	वहक्रिया
पुरुषार्थसाधनम्	मोक्ष का साधन है	विद्यासहायत्वम्	ब्रह्मविद्या की सहायताको
तथा	वैसाही	उपैति	करती है
प्राणभृतः	प्राणधारि-		

भावार्थ ॥

प्रथम तीन श्लोकों करके समुच्चयवादी के मत को दिखलाकर तत्पश्चात् उसके मतका खंडन करेंगे समुच्चयवादी कहता है कि कर्म और ज्ञान दोनों से मुक्ति होती है, क्योंकि वेदने दोनोंकाही विधान किया है, "ब्रह्मविदाप्नोतिपरम्" ब्रह्मका जाननेवाला ब्रह्म कोही प्राप्त होता है, यह वेदवाक्य आत्मज्ञान के सम्पादन करने को कहता है "कुर्वन्नेवेहकर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः" कर्मों को करता हुआही पुरुष संसार में सौ वर्षतक जीनेकी इच्छाकरै, और सौ वर्षही मनुष्यकी आयुका प्रमाण भी कहाहै, ॥ शतायुर्वै पुरुषः ॥ पुरुषकी आयुका प्रमाण भी सौ वर्षका ही है "यावज्जीवेदग्निहोत्रंजुहुयात्" जबतक जीतारहै तबतक अग्निहोत्रको करताही रहै, यह श्रुति भी आयुभर कर्मके करने कोही विधान करती है, इन्हीं वेदवाक्योंसे साबित होता है कि कर्म और ज्ञान दोनों ही मुक्तिकेप्रति कारण हैं, अर्थात् दोनों के करने सेही मुक्ति भी होती है, और दृष्टान्त को भी समुच्चयवादी दिखाता है ॥ उभाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणांगतिः तथैवज्ञानकर्मभ्यांप्राप्यतेब्रह्मशाश्वतम्॥ १ ॥ जैसे दोनों पंखों से पक्षी आकाशमें उड़ते हैं, तैसेही ज्ञान

और कर्म दोनों के साधन से जीवकी मुक्ति भी हो-
ती है॥ ११॥ मूलम्॥

कर्माकृतौ दोषमपि श्रुतिर्जगौ
तस्मात् सदा कार्यमिदं मुमुक्षुणा॥
नतु स्वतन्त्रा ध्रुवकार्यकारिणी
विद्यानकिंचिन्मनसाप्यपेक्षते १२॥

पदच्छेदः॥

कर्माकृतौ दोषम् अपि श्रुतिः जगौ तस्मात् सदा कार्यम् इदम् मुमुक्षुणा न तु स्वतन्त्रा ध्रुवकार्यकारिणी विद्या न किम् चिन्मनसा अपि अपेक्षते॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
कर्माकृतौ	कर्मकेनकरने में	जगौ	कहा है
श्रुतिः	वेदने	तस्मात्	इसलिये
अपि	भी	मुमुक्षुणा	मुमक्षपुरुप करके
दोपम्	दोप	इदम्	यहकर्म

सदा=नित्यही	किम्=क्या
कार्यम्=कर्तव्यहै	कर्म=किया
विद्या=ब्रह्मविद्या	चिन्मनसा=ज्ञानवान् करके
ध्रुवकार्य } कारिणी } =मोक्ष देनेवाली	
स्वतन्त्रा=स्वतन्त्र	नअपेक्षते=नहींचाही जाती है
नतु=नहीं है	

भावार्थ ॥

कर्मों के न करने में श्रुति दोपको भी दिखाती है वीरहावाएपदेवानांयोग्निमुद्धासयत इति ॥ वह पुरुष देवताओं के बलको नाशकरनेवाला होता है जो अग्निहोत्र के कुण्डकी अग्निको बुतादेता है ॥ स्मृति भी कहती है ॥ एकाहंजप्यहीनस्तुसंध्याहीनोदिनत्रयम् ॥ द्वादशाहानिरग्निश्चशूद्रएवनसंशयः ॥ १ ॥ जो पुरुष एकदिन गायत्रीका जप नहीं करता है और तीन दिन संध्योपासनको नहीं करता है और बारह दिन अग्निहोत्रको नहीं करताहै वह पुरुष शूद्र होजाता है इसमें संशय नहीं है. इसवास्ते मोक्षार्थी पुरुषको सदैवही कर्म करना चाहिये। अब सिद्धान्ती कहता है. मोक्षरूपी नित्यसुखके प्राप्त करनेवाली जो

आत्मविद्या है, सो अपने कार्य के करने में स्वतन्त्रहै अर्थात् कर्मकी सहायता को नहीं चाहती है, जैसे अंधकार के नाशकरने में सूर्य्य स्वतन्त्र है, किसी की सहायताको नहीं चाहता है, तैसेही विद्या भी है ॥ १२॥

मूलम् ॥

न सत्यकार्य्योऽपिहि यद्वदध्वरः
प्रकांक्षतेऽन्यानपिकारकादिकान् ॥
तथैवविद्याविधितः प्रकाशितै
र्विशिष्यतेकर्मभिरेवमुक्तये १३ ॥

पदच्छेदः ॥

न सत्यकार्यः अपि हि यद्वत् अध्वरः प्रकांक्षते अन्यान् अपि कारकादिकान् तथा एव विद्या विधितः प्रकाशितैः विशिष्यते कर्मभिः एव मुक्तये ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
नहि	नहीं है निश्चय करके	प्रकांक्षते	चाहता है
सत्य कार्यः	सत्यस्वर्गादिफल जिसमें ऐसा	तथाएव	वैसाही
अध्वरः	यज्ञ	विद्या	ब्रह्मविद्या
यद्वत्	जैसे	विधितः	विधिपूर्वक
अन्यान्	और	प्रकाशितैः	वेदवाक्यसे प्रकाशित किये गये
कारकादिकान्	सामग्री को	कर्मभिः	कर्मकरकेही
अपि	भी	मुक्तये	मुक्तिकेलिये
		विशिष्यते	विशेषप्रतिपाद्यहै

भावार्थ ॥

समुच्चयवादी कहता है आपने जो कहा कि विद्या मोक्षरूप नित्य कार्यके करने में स्वतन्त्र है,और किसी साधनकी अपेक्षा नहीं रखती है सो ऐसा आपका कथन ठीक नहीं है, क्योंकि श्रुति कहती है "अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतंभवति" चातुर्मास संज्ञकयज्ञकरनेवाले को अक्षय याने अविनाशी फल होता है, इस वेद प्रमाणसे यज्ञ भी स्थिरकार्य है, त-

थापि और भी प्रयाजादिअवांतर यज्ञरूप कारकों की अपेक्षा रखता है, तैसेही आत्मविद्या भी अग्निहोत्रादि कर्मों की अपेक्षा रखती है, क्योंकि वेद में लिखा है कि यावत् मनुष्य जीतारहै तावत्पर्यन्त अग्निहोत्रादिक कर्मोंको करताही रहै, अर्थात् अग्निहोत्रादिक कर्मों की सहायतासेही विद्याभी मोक्षरूपी कार्य को करसक्ती है, विना कर्म्मोंकी सहायतासे नहीं करसक्ती है, इस वास्ते ज्ञान कर्म का समुच्चय मुक्तिके प्रति कारण है ॥ १३ ॥

मूलम् ॥

केचिद्वदन्तीति वितर्कवादिन
स्तदत्र दुष्टं हि विरोधकारणात् ॥
देहाभिमानादभिवर्त्ततेक्रिया
विद्यागताहंकृतिनःप्रसिद्ध्यति १४॥

पदच्छेदः ॥

केचित् वदन्ति इति वितर्कवादिनः तत् अत्र दुष्टम् हि विरोधकारणात् देहाभिमानात् अभिवर्तते क्रिया विद्या गताहंकृतिनः प्रसिद्ध्यति ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
रामचन्द्र उवाच	= श्रीरामचन्द्रजी कहते भये	दुष्टम्	= दुष्टही याने ठीक नहीं
केचित्	= कोई एक	वदन्ति	= कहते हैं
वितर्कवादिनः	= वितर्कवादी	हि	= क्योंकि
इति	= इसप्रकार याने जैसे तुमने कहा है वैसेही	देहाभिमानात्	= देहाभिमान करके
वदन्ति	= कहते हैं	क्रिया	= क्रिया
तत्	= सो	अभिवर्तते	= होती है
अत्र	= इस मोक्षमार्ग विषे	च	= और
विरोधकारणात्	= विरोध के कारण	गताहंकृतिनः	= अहंकार रहित पुरुष करके
		विद्या	= विद्या
		प्रसिद्ध्यति	= प्राप्त होती है

भावार्थ ॥

सिद्धान्ती समुच्चयवादी के मतको सुनकर उस के मतको खंडन करता है ॥ श्रीरामचन्द्रजी ल-

क्ष्मणजीके प्रति कहते हैं हे लक्ष्मणजी ! समुच्चयवादी का मत ठीक नहीं है, क्योंकि ज्ञान और कर्म का परस्पर विरोध है, जिस पुरुष की ऐसी बुद्धि होती है कि मैं कर्त्ताहूं, मैं भोक्ताहूं, मैं इस कर्मको करूंगा, तब इसका फल सुख मेरेको प्राप्त होगा, तब वह पुरुष कर्म करने में प्रवृत्त होता है, और जिस पुरुषकी ऐसी बुद्धि है न मैं कर्त्ताहूं, न मैं भोक्ताहूं, किन्तु मैं असंग सबका साक्षी हूं, वह कर्म करने में प्रवृत्त नहीं होताहै जैसे शीत उष्ण एक स्थलमें विरोधी होने के कारण नहीं रहसक्ते हैं, तैसेही कर्तृत्वपना, और अकर्तृत्वपना, भी एकही अन्तःकरणरूपी स्थलमें नहीं रहसक्ते हैं क्योंकि कर्मों में अधिकार अज्ञानीका है और मोक्षमें अधिकार ज्ञानीका है, तम प्रकाशकी तरह ज्ञान अज्ञान भी दोनों एकही पुरुष में नहीं रहसक्ते हैं, इस वास्ते समुच्चयवादी मिथ्यावादी है, उसका मत त्यागने योग्य है ॥ १४ ॥

मूलम् ॥

विशुद्ध विज्ञान विरोचनांचिता
विद्याऽऽत्मवृत्तिश्चरमेतिभण्यते ॥

उदेतिकर्म्माऽखिलकारकादिभि
र्निहन्तिविद्याऽखिलकारकादिकम् १५

पदच्छेदः ॥

विशुद्धविज्ञानविरोचनांचिता विद्या आत्मवृत्तिः चरमा इति भण्यते उदेति कर्म अखिलकारकादिभिः निहन्ति विद्या अखिलकारकादिकम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
विशुद्धविज्ञानविरोचनांचिता	= विमलविज्ञानप्रकाशअनुभवयुक्त	इति	= करके
		विद्या	= ब्रह्मविद्या
		भण्यते	= कहीजाती है
चरमा	= चरमा	कर्म	= कर्म
आत्मवृत्तिः	= आत्मविषयिणीवृत्ति	अखिलकारकादिभिः	= संपूर्ण कारकादिकों करके

१चरमा-अंतिम यानी जिस वृत्तिके परे और वृत्तिका अभाव है॥

त्माके ज्ञानकरकेही दूरहोता है, कर्मादिकों करके कदापि दूर नहीं होता है, इसी हेतु से समुच्चयवादी मिथ्यावादी हैं॥ १५ ॥

मूलम्॥

तस्मात्त्यजेत्कार्यमशेषतःसुधी
 र्विद्याविरोधान्नसमुच्चयो भवेत॥
आत्मानुसंधानपरायणः सदा
 निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिगोचरः १६

पदच्छेदः॥

तस्मात् त्यजेत् कार्यम् अशेषतः सुधीः विद्याविरोधात् न समुच्चयः भवेत् आत्मानुसंधानपरायणः सदा निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिगोचरः॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
तस्मात्	=इसलिये	सुधीः	=श्रेष्ठबुद्धिमान् पुरुष

अशेषतः=सब प्रकारसे
कार्यम्=क्रियाको
त्यजेत्=छोड़देवे
क्योंकि
विद्याविरोधात्=विद्या और कर्म का परस्पर विरोध होने से
समुच्चयः=समुच्चय
नभवेत्=नहींहोता है

निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिगोचरः=दूरहोगई है सब इन्द्रियोंकी वृत्ति विषयों से जिसकी ऐसा पुरुष
सदाऽत्मानुसंधानपरायणः=आत्माके विचार विषेतत्पर
भवेत्=होवै

भावार्थ ॥

श्रीरामजी लक्ष्मणजी के प्रति कहते हैं, हे लक्ष्मण! जिस हेतुसे विद्या और कर्म का समुच्चय नहीं होसक्ताहै, तिसी हेतुसे विद्वान् सम्पूर्ण कर्मोंको त्यागकरके आत्मा का चिन्तनकरै, और सम्पूर्ण इन्द्रियोंको विषयों से हटावै, सो कहा भी है ॥ आसुप्तेरामृतेःकालेनयेद्वेदांतचिन्तया ॥ दद्यान्नावसरंकिंचित्कामादीनांमनागपि ॥ १ ॥ जाग्रत् से लेकर सुषुप्तिपर्यंत और जन्मसे

लेकर मरणपर्यन्त वेदान्तके चिन्तन करकेही काल को व्यतीतकरै और काम क्रोधादिकोंको किंचित् भी अवसर न देवै ॥ १६ ॥

मूलम् ॥

यावच्छरीरादिषु माययात्मधी
स्तावद्विधेयो विधिवादकर्मणाम् ॥
नेतीतिवाक्यैरखिलंनिषिध्यतत्
ज्ञात्वापरात्मानमथत्यजेत्क्रियाः १७

पदच्छेदः ॥

यावत् शरीरादिषु मायया आत्मधीः तावत् विधेयः विधिवादकर्मणाम् न इति इति वाक्यैः अखिलम् निषिध्य तत् ज्ञात्वा परात्मानम् अथ त्यजेत् क्रियाः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यावत्	=जबतक	मायया	=माया करके
शरीरादिषु	=शरीरादि अनात्मा विषे	आत्मधीः	=आत्मबुद्धिहै
		तावत्	=तबतक

विधिवाद कर्मणाम् = { वेदोक्त कर्मों के करने का	निषिध्य=तिरस्कार करके
विधेयः=अधिकार है	च=और
अथ=तत्पश्चात	परमात्मानम्=परमात्माको
न इतिइति=निषेधमुख वाक्यैः=वाक्योंकरके	ज्ञात्वा=जानकरके
तत्=उस	
अखिलम्=संपूर्णअनात्मबुद्धि को	क्रियाः=क्रियाओंको
	त्यजेत्=त्यागदेवै

भावार्थ ॥

रामजी कहते हैं,हे लक्ष्मणजी ! यावत्पर्यन्त शरीरादिकों में माया करके याने अज्ञान करके आत्मबुद्धि है, कि मैं शरीरहूं, यह मेरा शरीर है, मैंही कर्त्ता हूं,मैंही भोक्ताहूं, इसप्रकार का जबतक शरीर में अभिमान बनाहै, तबतक वेदविहित कर्मों का करनाही उचितहै, क्योंकि विना निष्काम कर्मों के करने से अन्तःकरण की शुद्धि नहीं होती है, और विना अन्तःकरण की शुद्धिके वेदवाक्यों का तात्पर्य भी पुरुष के चित्तमें नहीं बैठताहै, जब अन्तःकरण शुद्ध होजाताहै, तब

नेति नेति वेद-वाक्यों करके संपूर्ण जगत् को मिथ्या जानकर कर्मों का त्याग कर देता है ॥ १७ ॥

मूलम् ॥

यदा परात्मात्मविभेदभेदकं
विज्ञानमात्मन्यवभातिभास्वरम्
तदैवमायाप्रविलीयतेञ्जसा
सकारकाकारणमात्मसंसृतेः १८

पदच्छेदः ॥

यदा परात्मात्मविभेदभेदकम् विज्ञानम् आत्मनि अवभाति भास्वरम् तदा एव माया प्रविलीयते अञ्जसा सकारका कारणम् आत्मसंसृतेः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यदा	=जब	भास्वरम्	=प्रकाशमान
परात्मात्म विभेद भेदकम्	= परमात्मा और आत्मा के भेद का नाश करनेवाला	विज्ञानम्	=विशेषज्ञान
		आत्मनि	=अपने में
		अवभाति	=प्रकाशता है
		तदा एव	=उसीक्षण

आत्मसंसृतेः=जीवकी उत्पत्तिका	माया = अज्ञान
कारणम् = कारणरूप	अंजसा=शीघ्रही
सकारका = आवरण और विक्षेप रूपकार्यों समेत	प्रविलीयते=नाशकोप्राप्त होता है

भावार्थ ॥

रामजी कहते हैं, हे लक्ष्मणजी ! जिसकाल में आत्मवित् गुरुके उपदेश करके महावाक्यों के श्रवण मात्रसेही उत्पन्न हुई जो ब्रह्माकार वृत्तिहै, वही वृत्ति परमात्मा और जीवात्माके भेद ज्ञान का नाशकहै, जिसकालमें वह वृत्ति पुरुष के अन्तःकरण में प्रचंड सूर्य्य की तरह उदय होती है, उसी कालमें सहित कार्य्य के अविद्याका नाश होजाता है, अर्थात् फिर जन्ममरणरूपी संसार उस पुरुष को प्राप्त नहीं होता है ॥ १८ ॥

मूलम् ॥

श्रुतिप्रमाणाभिविनाशिता च सा
कथंभविष्यत्यपिकार्यकारिणी ॥

विज्ञानमात्रादमलाद्वितीयत
स्तस्मादविद्यानपुनर्भविष्यति १९

पदच्छेदः॥

श्रुतिप्रमाणाभिविनाशिता च सा कथम् भविष्यति अपि कार्यकारिणी विज्ञानमात्रात् अमलाद्वितीयतः तस्मात् अविद्या न पुनः भविष्यति॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
सा	वह अविद्या	कार्यकारिणी	आवरण और विक्षेपरूपकार्य की करने वाली
श्रुतिप्रमाणाभिविनाशिता	श्रुति के प्रमाणों करके विनाश को प्राप्त भई	भविष्यति	होगी
कथम्	कैसे	अपि	कदापि न होगी

तस्मात्=इसलिये	पुनः=फिर
अमला द्वितीयतः = शुद्ध अद्वैत	अविद्या=माया
विज्ञान मात्रात् = विज्ञान मात्रसे	न भविष्यति=नहीं उत्पन्नहोगी

भावार्थ॥

प्रश्न॥ विनाश को प्राप्तहुई जो अविद्याहै, सो फिर उत्पन्नहोकर जीवको जन्ममरणरूपी संसार को प्राप्त करदेगी॥ उत्तर॥ नष्टहुई जो अविद्या है, फिर उत्पन्न नहीं होसक्ती है, जैसे रज्जुके ज्ञानसे फिर रज्जुमें सर्पभ्रम नहीं होता है, और निद्रा की निवृत्ति के अनन्तर फिर जाग्रत् में स्वप्नके पदार्थों का भान नहीं होता है, और जैसे आप्तवक्ता के उपदेश से दशम के डूबने का भ्रम फिर नहीं होता है, भूतकाल का जैसे फिर आगमन नहीं होता है, युवा अवस्था में जैसे बाल्यावस्था का फिर आगमन नहीं होता है, जैसे दग्ध पट का पता नहीं लगता है, तैसेही आत्मवित् गुरु के उपदेश से और तत्त्वमस्यादि महावाक्यों करके नष्टहुई अविद्या फिर उत्पन्न नहीं होसक्ती है॥ प्रश्न॥ अविद्या भावरूप है, या अभावरूप है, यदि भावरूप याने सद्रूप मानोगे

तब उसकी निवृत्ति कदापि नहीं होगी, क्योंकि जैसे भावरूप आत्मा नित्यहै, तैसे अविद्याभी नित्यही सिद्ध होगी, यदि उसको अभावरूप मानोगे, तब आत्मा को उसका आवरण करना भी नहीं बनैगा, और फिर उससे कोई कार्य भी उत्पन्न नहींहोगा, क्योंकि अभाव नाम शून्यका है, सो शून्य किसीका भी कारण नहीं होसक्ता है, यदि अभावकोही कारण मानोगे, तब विनाही बीजों के सर्वत्र अंकुरादिक उत्पन्नहोने चाहिये, पर ऐसा तो नहीं होता है, इसवास्ते अविद्या अभावरूप भी नहीं है, तब फिर अविद्या का क्या स्वरूप है, और किसरीति से उसकी निवृत्ति होतीहै॥ उत्तर॥ अविद्या सत्य असत्य दोनों से विलक्षण है, वह अनिर्वचनीय है, यदि वह सत्य होती, तब उसकी निवृत्ति न होती पर निवृत्ति ज्ञान करके अवश्यहोती है, इस वास्ते वह सद्रूप नहीं है, और असद्रूपभी नहीं है, और कार्यों को उत्पन्न करती है, इसवास्ते वह सदसत् से विलक्षण अनिर्वचनीयहै, इसीको माया अज्ञान और प्रकृति नामों करके भी कहते हैं॥ प्रश्न॥ अज्ञान का लक्षण क्या है ॥ उत्तर॥ अनादि भावत्वेसति ज्ञाननिवर्त्यत्वमज्ञानम्॥ जो अनादिभाव रूपहो, और आत्मज्ञान करके जिसकी निवृत्तिहो,

उसी का नाम अज्ञान है, सो सत्य असत्य से विलक्षण है ॥ प्रश्न ॥ ज्ञान क्या है ॥ उत्तर ॥ अज्ञाननाशकत्वेसति स्वात्मबोधकत्वंज्ञानम् ॥ जो अज्ञान का नाशक हो, और अपने आत्मा के स्वरूप का बोधक हो, उसी का नाम ज्ञान है, सो तिस ज्ञान करके नाश को प्राप्तहुआ जो अज्ञान है, वह नाश हुआ २ फिर अपने कार्य को अर्थात् कर्तृत्वाभिमानको कैसे उत्पन्न करसक्ताहै, किन्तु कदापि नहीं करसक्ताहै, जिस जीते मूसेने विल्लीको न मारा, वह मराहुआ बिल्लीको कैसे मारसक्ता है, इसीप्रकार नष्टहुई अविद्या फिर कार्य को कैसे करसक्ती है ॥ १९ ॥

मूलम् ॥

यदास्य नष्टा न पुनः प्रसूयते
कर्ताहमस्येति मतिः कथं भवेत् ॥
तस्मात्स्वतन्त्रानकिमप्यपेक्षते
विद्याविमोक्षायविभातिकेवला २०

पदच्छेदः ॥

यदा अस्य नष्टा न पुनः प्रसूयते कर्ता अहम् अस्य इति मतिः कथम्

भवेत् तस्मात् स्वतन्त्रा न किम् अपि अपेक्षते विद्या विमोक्षाय विभाति केवला॥

अन्वयः शब्दार्थ
यदा=जब
अस्य=इसपुरुषकी
अविद्या=अविद्या
नष्टा=नाशहोगईहै
+च=और
पुनः=फिर
नप्रसूयते=नहीं उपजती है
तदा=तब
अस्य=इसपुरुषको
इति=ऐसी
मतिः=देहात्मबुद्धि
कथम्=कैसे
भवेत्=होगी कि

अन्वयः शब्दार्थ
अहंकर्त्ता=मैं कर्मका कर्त्ता हूं
तस्मात्=इसलिये
स्वतन्त्रा=स्वतन्त्र
विद्या=ब्रह्मविद्या
किम्अपि=कुछभीकिसीकी सहायता की
नअपेक्षते=अपेक्षानहीं करती है
केवला=केवल आपही
विमोक्षाय = मोक्षके लिये
विभाति = प्रकाशमानहोतीहै

भावार्थ ॥

रामजी कहते हैं, हे लक्ष्मण ! जब नाशको प्राप्त हुई अविद्या फिर उत्पन्न नहीं होती है, तब फिर कर्तृत्वबुद्धि भी उत्पन्न नहीं होती है, क्योंकि कारण के अभाव से कार्यका भी अभाव होजाता है, और कार्य कारणके अभाव होजाने से, अर्थात् अविद्या और अविद्याजन्य अहंकारके अभाव होजाने से, विद्या याने आत्मज्ञान मोक्षके लिये सूर्यवत् निर्मल आकाशरूपी हृदय में प्रकाशता है, और किसी दूसरे कर्मादि की सहायता को नहीं चाहता है ॥ २० ॥

मूलम् ॥

सा तैत्तिरीयश्रुतिराह सादरं
न्यासंप्रशस्ताखिलकर्मणांस्फुटम्॥
एतावदित्याह च वाजिनांश्रुति
र्ज्ञानंविमोक्षाय न कर्मसाधनम् २१

पदच्छेदः ॥

सा तैत्तिरीयश्रुतिः आह सादरम् न्यासम् प्रशस्ताखिलकर्मणाम् स्फुटम् एतावत् इति आह च वाजिनाम् श्रुतिः

ज्ञानम् विमोक्षाय न कर्मसाधनम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
सा	वह
तैत्तिरीय श्रुतिः	तैत्तिरीय शाखाकी श्रुति
सादरम्	आदरपूर्वक
प्रशस्ताखिलकर्मणाम्	प्रशंसा कियेगये संपूर्णकर्मों के
न्यासम्	त्यागको
स्फुटम्	स्पष्ट
आह	कहतीहै

अन्वयः	शब्दार्थ
च	और
एतावतइति	तैसेही
वाजिनाम्	वाजसनेयीशाखाकी
श्रुतिः	श्रुति
आह	कहतीहै कि
ज्ञानम्	ज्ञानही
विमोक्षाय	मोक्षके लिये है
कर्मसाधनम्	कर्मसाधन मोक्षके लिये
न	नहीं है

भावार्थ ॥

हे लक्ष्मणजी ! तैत्तिरीय श्रुतिभी आदरपूर्वक

सम्पूर्ण कर्मों के त्याग को कहती है ॥ न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैकेनामृतत्वमानशुः ॥ नतो कर्मों करके और न पुत्रों करके न धन करके पुरुष मोक्ष को प्राप्त होता है, किन्तु केवल त्याग करकेही मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ एतावदरेखल्वमृतत्वम् ॥ अरे मैत्रेयि ! आत्मज्ञान करकेही पुरुषको मोक्षकी प्राप्ति होती है, और भी अनेक श्रुतिवाक्य ज्ञान सेही मोक्ष की प्राप्ति को कहती हैं ॥ ज्ञात्वादेवंसर्वपापापहानिः क्षीणैक्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः ॥ आत्माके ज्ञानसेही सम्पूर्ण पापों की हानि होजाती है, और अविद्या आदिक क्लेशोंके नाश होने पर जन्म मृत्युभी दूर होजाते हैं, क्योंकि लिखाहै ॥ ऋतेज्ञानान्नमुक्तिः ॥ ज्ञानसे विना मुक्ति नहीं होती है ॥ २१ ॥

मूलम् ॥

विचारसत्वेन तु दर्शितस्त्वया
क्रतुर्नदृष्टान्त उदाहृतः समः ॥
फलैःपृथक्त्वाद्बहुकारकैःक्रतुः
संसाध्यतेज्ञानमतोविपर्ययम् २२॥

पदच्छेदः॥

विद्यासमत्वेन तु दर्शितः त्वया क्रतुः न दृष्टान्तः उदाहृतः समः फलैः पृथक्त्वात् बहुकारकैः क्रतुः संसाध्यते ज्ञानम् अतः विपर्ययम्॥

अन्वयः	शब्दार्थ
क्रतुः	= यज्ञादिकर्म
विद्यासमत्वेन	= ब्रह्मविद्या के समान
त्वया	= तुझ करके
दर्शितः	= दिखायागयाहै
परन्तु	= परन्तु उस विषे
समःदृष्टांतः	= तुल्यदृष्टांत
नउदाहृतः	= नहींकहा गया है

अन्वयः	शब्दार्थ
क्रतुः	= यज्ञादि कर्म
पृथक्त्वात्	= अलग २
फलैः	= फलोंकरके
बहुकारकैः	= बहुतसामग्री से
संसाध्यते	= सिद्धकिया जाताहै
अतः	= इससेयाने कर्मसे
विपर्ययम्	= उलटा
ज्ञानम्	= ज्ञानहै

भावार्थ ॥

अब समुच्चयवादि से पूछते हैं,हे समुच्चयवादि! तुमने जो विद्याके समानही कर्म को कहा है, तिसमें तुमने कोई दृष्टान्तको नहीं कहा है, और न कोई ज्ञान कर्म के समुच्चयमें वेदवाक्यको प्रमाण दिया है, और न तुमने पूर्वोक्त विरोधको हटायाहै, इसलिये तुम्हारा कथन सब मिथ्याहै, क्योंकि मोक्षके प्रति कर्मों की कारणता का निषेध वेदवाक्यही कररहे हैं ॥ मुण्डक ॥ अविद्यायां वर्त्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्तिबालाः ॥ यत्कर्मिणोनप्रवेदयान्तिरागाचेनातुराःक्षीणलोकाश्च्यवन्ते ॥ १ ॥ बालाः याने अज्ञानी जो कर्मी हैं, वे कर्मोंमेंही वर्त्तमान हुये २ मानते हैं कि हम कृतार्थ हैं, और स्वर्गादि फलों में रागी होकर कर्मी परमार्थ को नहीं जानते हैं, और कर्म करके आतुर हुये २ स्वर्ग से च्युत होजाते हैं, अर्थात् जब उनके पुण्य कर्म क्षीण होजाते हैं, तब स्वर्ग से नीचे लोकों को वे गिर पड़ते हैं ॥ इष्टापूर्त्तमन्यमानावरिष्ठंनान्यच्छ्रेयो वेदयन्तेप्रमूढाः ॥ नाकस्यपृष्ठेतेसुकृतेऽनुभूत्वेमंलोकं हीनतरञ्चाविशन्ति ॥ १ ॥ जोकि मूर्ख कर्मी हैं वे इष्ट और पूर्त कर्मों कोही श्रेष्ठ मानते हैं, और कहते हैं इन कर्मों से अतिरिक्त कल्याणकारक और कोई

नहीं है, कर्मी स्वर्गलोकमें कर्मों के फल को अनुभव करके पश्चात् इस मर्त्यलोकमें गिरते हैं, फिर कर्मोंको करके स्वर्ग को भोगते हैं, फिर फल भोगकर गिरते हैं, इसीतरह वे भ्रमतेही रहते हैं, इस पर अनेक वेद वाक्य कर्मों से मोक्षका निषेध करते हैं ॥ १ ॥ और गीतामें भी कहाहै ॥ यामिमांपुष्पितांवाचंप्रवदंत्यविप श्चितः ॥ वेदवादरताःपार्थनान्यदस्तीतिवादिनः ॥ १ ॥ कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ॥ क्रियावि शेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिंप्रति ॥ २ ॥ भोगैश्वर्यप्रसक्ता नांतयापहृतचेतसाम्॥ व्यवसायात्मिकाबुद्धिःसमाधौन विधीयते ॥ ३ ॥ भगवान् कहते हैं अविपश्चित् जो अज्ञानी जीव हैं, वे इस कर्मकाण्डकी सुन्दर पुष्पों की तरह वाणी को कथन करते हैं, वे वेदमें जो अर्थ वादरूपी वाक्य हैं, उनमेंही प्रीतिवाले हैं, वे कहते हैं, स्वर्गसुखसे अतिरिक्त मोक्ष नहीं है ॥ १ ॥ कामना करके उनके चित्त व्याकुल होरहे हैं, भोग ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये जिन यज्ञादिक कर्मों में बहुतसी क्रिया करनी पड़ती हैं ॥ २ ॥ जो भोगोंमेंही आसक्त हैं, उन भोगों करकेही हरेगये हैं चित्त जिनके, उनकी निश्चयात्मकबुद्धि आत्मामें नहीं लगती है ॥ ३ ॥ इस तरह के अनेक वाक्य पुराणों में भी मिलते हैं जो कर्मों

से मोक्षका निषेध करते हैं, यज्ञादिक जो कर्म हैं, सो बहुत प्रकार के कर्मों करके सिद्ध होते हैं, और आत्मज्ञान में कर्म प्रतिबंधकहै, क्योंकि कर्म सब पुरुषको बाह्यमुख करते हैं, और विना पुरुषों के अन्तर्मुख होने के ज्ञान नहीं प्राप्त होता है, इस वास्ते दोनोंका बड़ा अन्तर है, और सम्पूर्ण कर्मों के त्याग विना मन अन्तर्मुख कदापि नहीं होता है, इसलिये दोनों का समुच्चय नहीं बनसक्ता है ॥ २२ ॥

मूलम् ॥

सप्रत्यवायोह्यहमित्यनात्मधी
रस्य प्रसिद्धो न तु तत्त्वदर्शिनः ॥
तस्माद्बुधैस्त्याज्यमविक्रियात्मभि
र्विधानतःकर्म विधिप्रकाशितम् २३॥

पदच्छेदः ॥

सप्रत्यवायः हि अहम् इति अनात्मधीः अस्य प्रसिद्धः न तु तत्त्वदर्शिनः तस्मात् बुधैः त्याज्यम् अविक्रियात्मभिः विधानतः कर्म विधिप्रकाशितम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
अहम्	मैं
इति	ऐसा
जानामि	समुझता हूं कि
अस्य	इसपुरुषकी
अनात्मधीः	देहात्म बुद्धि
सप्रत्यवायः	सदोष
प्रसिद्धः	कहीगई है
तत्त्वदर्शिनः	तत्त्वदर्शीकी
न	नहीं
तस्मात्	इसकारण

अन्वयः	शब्दार्थ
अविक्रियात्मभिः	निर्विकार है अन्तःकरणजिनका ऐसे
बुधैः	ज्ञानियोंकरके
विधानतः	विधानसे
विधिप्रकाशितम्	विधिपूर्वकप्रकाशितकिया गया
कर्म	कर्म
त्याज्यम्	त्यागनेयोग्य है

भावार्थ॥

प्रश्न॥ कर्मों के त्याग करदेने से प्रत्यवाय होगा, क्योंकि धर्मशास्त्र में कर्मके त्यागी को पतित कहाहै, इस

लिये कर्मोंका करनाही उचित है ॥ उत्तर ॥ वेदों में कर्मी को अज्ञानी मूर्ख लिखा है, सो पीछे श्रुतिवाक्यों करके दिखाया है, केवल अज्ञानी के लिये सब विधि निषेधवाक्य बने हैं, ज्ञानवान् के लिये नहीं बने हैं, क्योंकि आत्मवित् के ऊपर वेदकी आज्ञा नहीं है ॥ गीता ॥ जिज्ञासुरपियोगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥ जो ज्ञानयोगका जिज्ञासुमात्र भी है, वह भी शब्दब्रह्म जो वेद है, उसकी आज्ञा को उल्लंघन करके वर्तता है अर्थात् उसपर वेदकी आज्ञा नहीं है, जब कि जि· ज्ञासु पर नहींहै तब फिर ज्ञानवान् पर कैसे होसक्ती है, इस वास्ते ज्ञानी को कर्मों के त्याग करने का पाप नहीं होता है, किन्तु अज्ञानी कोही कर्मों के त्याग करने का पातक होता है, क्योंकि उसको ऐसी बुद्धि होती है, कि इस कर्मके त्याग करने से मैं पापी हूंगा, और इसी कारण उसको प्रत्यवाय होता है, ज्ञानवान् को ऐसी बुद्धि होती नहीं है, इसी वास्ते उस को प्रत्यवाय भी नहीं होता है ॥ २३ ॥

मूलम् ॥

श्रद्धान्वितस्तत्त्वमसीतिवाक्यतो
गुरोःप्रसादादपिशुद्धमानसः ॥

विज्ञायचैकात्म्यमथात्मजीवयोः
सुखीभवेन्मेरुरिवाप्रकम्पनः २४॥

पदच्छेदः॥

श्रद्धान्वितः तत् त्वम् असि इति वाक्यतः गुरोः प्रसादात् अपि शुद्धमानसः विज्ञाय च ऐकात्म्यम् अथ आत्मजीवयोः सुखी भवेत् मेरुः इव अप्रकम्पनः॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
च	और	श्रद्धान्वितः	श्रद्धासम्पन्नपुरुष
अथ	फिर	तत्	सोई
गुरोः	गुरु के	त्वम्	तू
प्रसादात्	प्रसादसे	असि	है
शुद्धमानसः	शुद्धहुवाहै अन्तःकरणजिसका ऐसा	इति	ऐसे
		वाक्यतः	वाक्यसे

आत्मजीवयोः = आत्मा और परमात्मा के	मेरुःइव = सुमेरु के समान
ऐकात्म्यम् = ऐकताको	अप्रकम्पनः = निश्चल
विज्ञाय = जानकरके	सुखी = सुखी
	भवेत् = होवे है

भावार्थ ॥

रामजी कहते हैं, हे लक्ष्मण ! निष्कामकर्मों करके शुद्ध हुआहै मन जिसका, ऐसा जो शुद्ध अन्तःकरण वाला श्रद्धालु पुरुष है, वही ब्रह्मवित् गुरुकी कृपासे वेदवाक्यों द्वारा जीव ब्रह्म के अभेद ज्ञानको प्राप्त होता है, और वही पुरुष अप्रकम्पमन हुआ २ संसार में सुखी होताहै, इतर अज्ञानी कर्मी कदापि सुखी नहीं होताहै, किंतु वह भेदरूपी अग्नि करके सदैव जलताही रहता है, इसीवास्ते भेदवादी को दोष भी लिखा है ॥ भेदवादकथोन्मत्तःकार्याऽकार्यविवर्जितः॥ मद्यसंपर्कमात्रेणकथंवाच्योद्विजइति॥ १ ॥ जो भेदवादरूपी कथा में उन्मत्त होरहा है, कर्तव्य अकर्तव्य से रहित है, वह भेदवादरूपी मद्य के सम्बन्ध करके द्विज कैसे होसक्ता है, किन्तु कदापि नहीं हो सक्ता है ॥ २४ ॥

मूलम् ॥

आदौपदार्थावगतिर्हिकारणं
वाक्यार्थविज्ञानविधौ विधानतः ॥
तत्त्वंपदार्थौ परमात्मजीवका
वसीतिचैकात्म्यमथानयोर्भवेत् २५ ॥

पदच्छेदः ॥

आदौ पदार्थावगतिः हि कारणम् वाक्यार्थविज्ञानविधौ विधानतः तत्त्वं प-
दार्थौ परमात्मजीवकौ असि इति च ऐकात्म्यम् अथ अनयोः भवेत् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
वाक्यार्थविज्ञानविधौ	= वाक्यकेअर्थकीजोविज्ञानविधि है तिसमें	पदार्थावगतिः	= पदोंकेअर्थ का ज्ञान
आदौ	= प्रथम	हि	= निश्चय करके
विधानतः	= विधिपूर्वक	कारणम्	= कारण है
		इतिच	= इसीप्रकार

तत्त्वं पदार्थौ	= तत्पद और त्वंपद का वाच्यार्थ जो	अथानयोःऐक्यम्	= इनकेभी अभेदज्ञानमें
परमात्म जीवकौ	= परमात्मा और जीवहै	असि	= "असि" इस पदको कारणता है

भावार्थ ॥

रामजी कहते हैं, हे लक्ष्मण ! वाक्यार्थज्ञान के प्रतिपदार्थज्ञानको कारणता है, अर्थात् वाक्य के अर्थ का ज्ञान कब होता है, जब कि उसके प्रत्येक पदके अर्थ का ज्ञान होजाता है जैसे कि ॥ गामानय ॥ यह वाक्य है, इसमें गाम् आनय ये पद हैं अब किसी ने दूसरे पुरुष से ऐसा वाक्य कहा, तो, इस वाक्य के अर्थ का ज्ञान उसको कब होगा जबकि प्रथम उसको ॥गाम्-आनय॥इन पदोंके अर्थका ज्ञान होलेवैगा,इसी तरह जबकि साधनचतुष्टयसंपन्न अधिकारी ब्रह्मनेष्ठी ब्रह्मश्रोत्री गुरुके पास जावैगा, और वह गुरु उसको ज्ञानका अधिकारी जानकर जीवात्मा परमात्मा के अभेद का उपदेश तत्त्वमसि महावाक्य करके करेगा, तब तत्त्वमसि वाक्य के अर्थ का ज्ञान उसको

कब होगा और जब प्रथम इस वाक्यमें जो तत् त्वम् असि पद हैं इन पदों का ज्ञान उसको होलेवैगा, तत् पद ईश्वरका वाचक है, अर्थात् सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सबका नियन्ता, सबका प्रेरक, स्वतन्त्र, और परिपूर्ण जो ईश्वर है, उसीका बोधक महावाक्य में तत्पद है, और त्वंपद जीवका वाचक है, अर्थात् अल्पज्ञ, असमर्थ, परतन्त्र, परिच्छिन्न, जो जीवहै, तिसका बोधक त्वम् पदहै, और ॥ असि ॥ यह क्रियापद है, याने दोनों के अभेद को बोधन करता है, सो सर्वज्ञत्वादिक गुणों करके युक्त ईश्वरका अल्पज्ञत्वादिक गुणों करके युक्त जीवके साथ अभेद नहीं होसक्ता है, क्योंकि दोनों का परस्पर विरोध है ॥ २५ ॥

मूलम् ॥

प्रत्यक्परोक्षादिविरोधमात्मनो
विहायसंगृह्यतयोश्चिदात्मताम् ॥
संशोधितांलक्षणयाचलक्षितां
ज्ञात्वास्वमात्मानमथाद्वयोभवेत् २६

पदच्छेदः ॥

प्रत्यक्परोक्षादिविरोधम् आत्मनोः

विहाय संगृह्य तयोः चिदात्मताम् संशो-
धिताम् लक्षणया च लक्षिताम् ज्ञात्वा
स्वम् आत्मानम् अथ अद्वयः भवेत्॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
तयोः	= दोनों	संशोधिताम्	= शुद्ध की गई
आत्मनोः	= परमात्मा औरजीवात्माके	चिदात्मताम्	= चैतन्यता को
प्रत्यक्परोक्षादिविरोधम्	= प्रत्यक्षअरु परोक्षादि विरोध को	संगृह्य	= ग्रहणकरके
		अथ	= फिर
		स्वम्	= अपने
		आत्मानम्	= आत्माको
		ज्ञात्वा	= जानकरके
विहाय	= त्यागके	अद्वयः	= अभेद
च	= और	भवेत्	= होवै

भावार्थ॥

रामजी कहते हैं,हे लक्ष्मण! तत् और त्वं पदों के वाच्यार्थों का अभेद किसी प्रकार से भी नहीं होसक्ता है,क्योंकि सर्वज्ञत्वादिक,और अल्पज्ञत्वादिक गुणोंका

परस्पर विरोध है, क्योंकि ईश्वर में अल्पज्ञत्वादिक गुण नहींहैं,और जीवमें सर्वज्ञत्वादिक गुण नहीं हैं,यदि वाच्यार्थों का अभेद मानाजावै, तब और भी दोषआवैंगे, जब जीवका ईश्वर के साथ अभेद होजावैगा तब जीव में भी सर्वज्ञत्वादिक गुण आने से वह भी ईश्वर होजावैगा, और ईश्वर में जीवके अल्पज्ञत्वादिक गुण आनेसे वह जीव होजावैगा, अथवा दोनों में दोनों प्रकार के सर्वज्ञत्व अल्पज्ञत्व गुण होने से किसी कालमें ईश्वर सर्वज्ञ होगा, और किसी कालमें अल्पज्ञ होगा, किसी काल में जीव भी सर्वज्ञ होगा, और किसी कालमें अल्पज्ञ होगा,इसीसे वाच्यार्थोंका अभेद नहीं होसक्ता है, फिर जीव अहंप्रत्यय का याने अहमाकारवृत्ति का विषय होने से अपरोक्ष है, और ईश्वर परोक्ष है, इस हेतु से भी वाच्यार्थों का अभेद नहीं होसक्ता है, तिस पूर्वोक्त विरोधके हटाने के लिये शास्त्रकारों ने लक्षणा मानी है, अर्थात् लक्षणा करके दोनों के लक्ष्यार्थों का अभेद होसक्ता है, सो लक्षणा तीन प्रकारकी है, जहल्लक्षणा, अजहल्लक्षणा, जहदजहल्लक्षणा, और लक्षणा के विषयका नाम लक्ष्य है ॥ जहांपर शक्य को अन्तर्भूत करके अर्थात् वाच्यार्थका त्यागकरके अर्थान्तर की प्रतीति

होती है, वहांपर जहल्लक्षणा की प्रवृत्ति होती है, जैसे एक पुरुष शत्रुके गृहमें भोजन करने को गया, जब आया तब दूसरे ने तिससे कहा ॥विषंभुंक्ष्व॥ याने विषको खाले, अब यहांपर विषपदकी शक्ति विषवाले पदार्थ में है, वही विषपदका शक्य है, तिसका ग्रहण न करके शत्रुके गृहमें भोजनकरना इसीका ग्रहण होता है, इस लिये विषंभुंक्ष्व, इस वाक्य की शत्रु के घर में भोजन करने से हटाना जहल्लक्षणा करकेही प्रतीत होता है, और जहां पर शक्यार्थ को अन्तर्भूत करके अर्थांतर की प्रतीति होती है, वहां पर अजहल्लक्षणा होती है, यथा ॥ शुक्लोघटः ॥ अब यहां पर शुक्ल शब्द का अर्थ शुक्ल गुण है, तिसको अन्तर्भूत करके शुक्लगुणवाले द्रव्यमें लक्षणा करकेही इस वाक्य की प्रवृत्ति होती है, घट कैसाहै शुक्लरूपवाला है, और जहांपर विशिष्ट का वाचक पद एकदेशको त्याग करके एकदेश में प्रवृत्त होता है, वहांपर जहदाजहल्लक्षणा होती है, यथा ॥ सोयंदेवदत्तइति ॥ जैसे किसी ने एक पुरुषको मथुरा में पहले देखा था, फिर उसी पुरुष को उसने काशी में देखा, तब कहा ॥ सोयं देवदत्तः ॥ वही यह देवदत्त है, जिसको कि मैंने पहले मथुरामें देखा था, अब यहां पर वर्त्तमान काल

और पूर्वकाल विशिष्ट देवदत्त के शरीर का बोध तो नहीं होसक्ताहै, क्योंकि दोनों काल इकट्ठे देवदत्त के शरीर में नहीं रहसक्के हैं, दोनों परस्पर विरोधी हैं इस लिये यहांपर जहदाजहल्लक्षणा होती है ॥ सोयं देवदत्तः ॥ इसका एकदेश जो पूर्व अपर काल है, उसका त्याग करके केवल देवदत्तके शरीर का लक्षणा करके ही बोध होता है इसीप्रकार ॥ तत्त्वमसि ॥ इस वाक्य ने जो जीव ईश्वर का अभेद बोधन कियाहैं, सो सर्वज्ञत्व अल्पज्ञत्वादिक गुणों करके विशिष्ट जो वाच्यार्थ है उसका अभेद अन्वय नहीं होसक्ता है, परन्तु जहदाजहल्लक्षणा करके अभेद अन्वय होजाताहै, अर्थात सर्वज्ञत्वादिक गुणों का और अल्पज्ञत्वादिक गुणों का त्याग करके केवल दोनोंका जो लक्ष चेतन भागहै, उस का जहदाजहल्लक्षणा करके अभेद अन्वय होजाताहै अर्थात् दोनों की ऐक्यता का बोध होता है इसी का नाम भागत्यागलक्षणा भी है ॥ २६ ॥

मूलम् ॥

एकात्मकत्वाज्जहतीनसम्भवे
त्तथाऽजहल्लक्षणमाविरोधतः ॥

सोयंपदार्थाविवभागलक्षणा
युज्येततत्त्वंपदयोरदोषतः ॥ २७ ॥

पदच्छेदः ॥

एकात्मकत्वात् जहती न सम्भवेत् तथा अजहल्लक्षणम् आविरोधतः सः अयम् पदार्थौ इव भागलक्षणा युज्येत तत्त्वम्पदयोः अदोषतः ॥

अन्वयः शब्दार्थ अन्वयः शब्दार्थ

एकात्मकत्वात् = ईश्वरऔर जीवकीएक्यता के कारण

अजहल्लक्षणा = अजहल्लक्षणा

नसम्भवेत् = नहींसम्भव होती है

जहती = जहतीलक्षणा

अतः = इसलिये

नसम्भवेत् = नहींसम्भव होती है

सःअयम्इव = सोऽयंपदार्थवत्

तथा = वैसेही

अविरोधतः = विरोध के कारण

तत्त्वम्पदयोः = तत्त्वंपद की

अदोषतः = { निर्दोषतः के कारण	भागलक्षण। } = भागत्याग लक्षणा
पदार्थौ=पदोंकेअर्थौंको	युज्येत = युक्तकरती है

भावार्थ ॥

"तत्त्वमसि" इस महावाक्य में जहल्लक्षणा नहीं बनती है, क्योंकि यहां पर तत्पद और त्वंपद के अर्थौंकी ऐक्यता विवक्षित याने इच्छित है, और जहल्लक्षणामें समग्र वाच्यार्थ का त्याग होजाता है, जब कि तत्त्वंपदों के समग्र वाच्यार्थ का त्यागकिया जावैगा, तब चेतनभागकाभी त्यागही होजावैगा, और ऐक्यता भी किसीप्रकार से नहीं होगी, इसलिये जहल्लक्षणा का त्याग करके भागत्यागलक्षणा करकेही ऐक्यता होसक्ती है, और तत्त्वमसिवाक्यमें अजहल्लक्षणा भी नहीं बनती है, क्योंकि जह[illegible] वाक्यार्थ याने वाच्यार्थका त्याग न करके तिससेअधिक [illegible]न्तर का ग्रहणहो, वहां पर अजहल्लक्षणा होती है, सो "तत्त्वमसि" इस वाक्यमें सम्पूर्ण वाच्यार्थ का ग्रहण करके फिर उसे अधिक का ग्रहण करना बनता नहीं है, क्योंकि जब तत्पद और त्वंपद के सर्वज्ञत्व और अल्पज्ञत्वादिरूप वाच्य अर्थों का त्याग न होगा तब पू-

वोक्त विरोध ज्योंका त्योंही बना रहेगा, और ऐक्यता किसी प्रकारसे भी नहीं बनैगी, इसवास्ते भागत्याग लक्षणा करके ही लक्ष्यार्थ चेतनों की ऐक्यता होजायगी ॥ २७ ॥ मूलम् ॥

रसादिपञ्चीकृतभूतसम्भवं
भोगालयंदुःखसुखादिकर्मणाम् ॥
शरीरमाद्यंदुरितादिकर्मजं
मायामयंस्थूलमुपाधिरात्मनः ॥२८॥

पदच्छेदः ॥

रसादिपञ्चीकृतभूतसम्भवम् भोगालयम् दुःखसुखादिकर्मणाम् शरीरम् आद्यम् दुरितादिकर्मजम् मायामयम् स्थूलम् उपाधिः आत्मनः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
			च=और
रसादिपञ्चीकृतभूतसंभवम्	=पृथिवीआदि पञ्चीकृतपञ्च महाभूतों कर के उत्पन्न हुआ	दुरितादिकर्मजम्	=पाप पुण्य आदिकर्मों करके उत्पन्न हुआ

दुःखसुखादिकर्मणाम्	सुखदुःखादि कर्मों के	मायामयम्=मायायुक्त
		आद्यम्=आदि
		स्थूलम्=स्थूलशरीर
भोगालयम्=	भोगन कास्थान	आत्मनः=आत्माकी
		उपाधिम्=उपाधि है

भावार्थ ॥

अब श्रीरामजी स्थूलशरीर को प्रथम आत्माकी उपाधि करके दिखाते हैं ॥ हे लक्ष्मण ! पृथिवी आदिक पञ्चीकृत पांच महाभूतों से है उत्पत्ति जिसकी, और भोगों का आश्रय है जो, वही है स्थूलशरीर, अर्थात् सुखदुःखादिकों के कारणीभूत जो पुण्य पापरूप कर्महैं, तिन कर्मोंके फल जो सुख दुःखादिक हैं, उन के भोगने का यह स्थूलशरीर मन्दिर है बिना स्थूल शरीर के सुख दुःखादिकों को जीव नहीं भोगसक्ता है, और पांचोंभूतोंका पञ्चीकरण इसप्रकार से स्थूल शरीर में है, पांचोंभूतों में से प्रथम एक २ भूतके दो २ भाग किया, फिर पांचोंका आधा २ भाग जुदा रक्खा, और बाकीके आधे भागोंमेंसे एक२ भागके चार२भाग किया, तिस एक २ आधेमें चारों के आठवें हिस्सोंको मिलादिया, इसप्रकार करनेसे पञ्चीकरण पूराहोजावै

गा ॥ जैसे पांच सेर पांच प्रकारकी जिनिस है, एक एक प्रकार की जिनिस एक २ सेरहै, अब हरएक सेर के दो २ भाग बराबर करदिया, उनमें से पांच आध सेरोंको जुदा २ धर दिया, और बाकी के पांच आध सेरोंमें से एक २ आधसेर के चार चार भाग किया, तब आध आध पावका एक २ भाग हुआ, अब वह जो पांच आधसेरा जुदा जुदा रक्खा है, उन में इन पांचों के आध आध पाव भागको मिलाने से सब एक एक सेर पूरा होजावैगा, परन्तु जिसमें मिलाना हो, उसका अपना आधपाव उसमें न मिलाना, बाकी चारों के आधपाव को मिलाना, इसीतरह पृथिवीआदि पांचों भूतों का पञ्चीकरण समझ लेना, जो पार्थिवशरीर हैं, उनमें आधाहिस्सा पृथिवीकाहै, और आधेमें चारोंभूतहैं, और जोकि जलीय शरीरहैं, उनमें आधा हिस्सा जलका है, और [illegible] बाकी के चारों भूतहैं, इसीतरह वायु [illegible] भी जानलेना, फिर वह स्थूलशरीर उत्पत्ति नाशवाला है, और पूर्वले कर्मों से यह स्थूलशरीर उत्पन्न हुआ है, और मायामय यह शरीर है, इसी वास्ते और ग्रन्थमें भी आचार्यों ने स्थूलशरीरका लक्षण कियाहै, पञ्चीकृत पञ्चमहाभूतैःकृतंसत्कर्म्म जन्यंसुखदुःखभोगायतनंस्थूलशरीरम् ॥ १ ॥ पञ्चीकृत

पांच महाभूतों करके किया हुआ सत्कर्मोंसे जन्य सुख दुःख के भोगका जो आश्रय हो, उसका नाम स्थूल शरीर है ॥ २८ ॥

मूलम् ॥

सूक्ष्मंमनोबुद्धिदशेन्द्रियैर्युतं
प्राणैरपञ्चीकृतभूतसम्भवम् ॥
भोक्तुंसुखादेरनुसाधनंभवे
च्छरीरमन्यद्विदुरात्मनोबुधाः॥२९॥

पदच्छेदः ॥

सूक्ष्मम् मनोबुद्धिदशेन्द्रियैः युतम् प्राणैः अपञ्चीकृतभूतसम्भवम् भोक्तुम् सुखादेः अनुसाधनम् भवेत् शरीरम् अन्यत् विदुः आत्मनः बुधाः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
		च	और
मनोबुद्धिदशेन्द्रियैः	मन बुद्धि और दश इन्द्रियों करके	प्राणैः	पांचप्राणों करके
		युतम्	युक्त

अपञ्चीकृतभूतसम्भवम् = अपञ्चीकृत पांच भूतों से उत्पन्न हुआ	भोक्तुम् = भोगने के लिये
	अनुसंधानम् = स्थान
	भवेत् = होताहै
सूक्ष्मम् = सूक्ष्म	आत्मनः = आत्मासे
शरीरम् = शरीर	अन्यत् = इसकोपृथक्
	बुधाः = बुद्धिमान् पुरुष
सुखादेः = सुख और दुःखके	विदुः = जानते हैं

भावार्थ ॥

पूर्वले वाक्य करके स्थूलशरीरका लक्षण रामजी ने कहा है, अब इस वाक्य करके सूक्ष्मशरीर के लक्षणको [illegible] है, हे लक्ष्मण! सूक्ष्मशरीर जो सत्तरह [illegible] का बना हुआ है, प्रत्यक्ष का विषय नहीं है, क्योंकि उसका कारण जो पांच सूक्ष्म तन्मात्रा हैं, वे भी प्रत्यक्ष के विषय नहीं हैं, मन १ बुद्धि १ कर्मेन्द्रिय ५, ज्ञानेन्द्रिय ५ प्राण ५, ये सब सत्तरहतत्त्व कहलाते हैं, इन्हीं के समुदायका नाम सूक्ष्मशरीर है, इसीको लिंग

तथा पुर्यष्टिका भी कहते हैं, और भोक्ता जीव के लिये सुखदुःखादिकों के ज्ञानका यह साधन है, परंतु स्थूल शरीरके साथ जबतक सूक्ष्म का सम्बन्ध नहीं होता है, तबतक भोक्ताको सुख दुःखका ज्ञान नहीं रहता है, जब स्थूल के साथ इसका सम्बन्ध होता है, तभी भोक्ता को सुख दुःख का ज्ञानभी होताहै, और उसी सम्बन्ध का नामही जन्म है, और सम्बन्ध के नाशका नाम मरणहै, आत्माकी यह लिंगोपाधि कही जातीहै॥प्र०॥ लिंगशरीर माननेकी क्या आवश्यकता है, विनाही लिंगशरीर के आत्मा जन्मान्तर और लोकान्तर में गमन करैगा ॥ उ० ॥ आत्मा निरवयवहै, निरवयव पदार्थ का विना उपाधि के गमन बन नहीं सक्ताहै, फिर निरवयव पदार्थ सारे ब्रह्माण्ड भरमें एकही व्यापक है, उसका परिच्छिन्न होना भी नहीं होताहै, इसलिये तिसका परिच्छेदक उपाधि कोई माननी पड़ैगी, सो लिंगशरीर कोही मानलो, इसमें क्या हानि है और श्रुतिमें भी कहा है, मैं एकसे अनेक होजाऊं, ऐसी इच्छा परमात्मा को जगत् की उत्पत्तिकालमेंहुई, वह विना उपाधि के अनेक होजावै, सो किसी प्रकार सेभी नहीं होसक्ता है, इसलिये जीव की उपाधि तुमको जरूर लिंगशरीर मानना पड़ैगा ॥ २९ ॥

मूलम् ॥

अनाद्यनिर्वाच्यमपीहकारणं
मायाप्रधानन्तुपरंशरीरकम् ॥
उपाधिभेदात्तुयतःपृथक्स्थितं
स्वात्मानमात्मन्यवधारयेत्क्रमात् २०

पदच्छेदः ॥

अनाद्यनिर्वाच्यम् अपि इह कारणम् मायाप्रधानम् तु परम् शरीरकम् उपाधिभेदात् तु यतः पृथक् स्थितम् स्वात्मानम् आत्मनि अवधारयेत् क्रमात् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अनाद्यनिर्वाच्यम्	अनादि अनिर्वाच्य	यतः	इसीकारण
मायाप्रधानम्	मायाप्रधानको	उपाधिभेदात्	उपाधि के भेदसे
कारणम्	कारण	आत्मनि	देहमें
शरीरकम्	शरीर	स्थितम्	स्थितहुये
इह	जानै	स्वात्मानम्	अपनी आत्माको

क्रमात्=क्रमसे	अवधारयेत्= निश्चय करै
पृथक्=अलग	

भावार्थ ॥

पूर्वले दो वाक्यों करके स्थूल और सूक्ष्मशरीर को रामजीने दिखायाहै,अब इस वाक्य करके कारण-शरीर को दिखाते हैं, हे लक्ष्मण! जो अनादि है, और अनिर्वचनीय है याने सत्य असत्य से जो विलक्षण है, और माया याने अज्ञान प्रधान है जिसमें; उसीका नाम कारणशरीर है, वह सूक्ष्मशरीर का भी कारण है, इसी वास्ते उसका नाम कारणशरीर है, और स्थूल सूक्ष्म दोनों से वह परे है, और "अहं न जानामि" मैं नहीं जानताहूं, यह प्रत्यय जिसके होने में प्रमाण है॥ और आर्य्यों ने भी कारणशरीर का लक्ष इस तरह किया है॥ अनिर्वाच्यानाद्यविद्यारूपं शरी… रण भूतं स्वस्वरूपाज्ञानयदास्ति तत्कारणशरीरम्॥ अनिर्वाच्य अनादि अविद्याहीहै स्वरूप जिसका और स्थूल सूक्ष्म दोनों शरीरों का जो कारण है, अपने स्वरूपका जो अज्ञान है, उसीका नाम कारणशरीर है, और जैसे स्थूल सूक्ष्म शरीर आत्मा नहीं हैं, तैसे यह कारणशरीर भी आत्मा नहीं है॥ ३० ॥

मूलम् ॥

कोशेषुपञ्चस्वपितत्तदाकृति
विभातिसंगात्स्फटिकोपलोयथा ॥
असंगरूपोयमजोऽद्वयोपिवा
विज्ञायतेऽस्मिन्परितोविचारतः ३१॥

पदच्छेदः ॥

कोशेषु पञ्चसु अपि तत्तदाकृतिः विभाति संगात् स्फटिकोपलः यथा असंगरूपः अयम् अजः अद्वयः अपि वा विज्ञायते अस्मिन् परितः विचारतः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
असंगरूपः	असंग	अपि	निश्चय करके
अजः	अज		
अद्वयः	अद्वैत	तत्तदाकृतिः	उनके आकारकेतुल्य
अयम्	यह आत्मा		
पञ्चसु	पांचों	विभाति	भासता है
कोशेषु	कोशोंमें	यथा	जैसे

संगात्={नीलपीतादि रंगकेसंग से	विचारतः=विचार से
स्फटिकोपलः={स्फटि कमणि	परितः=चारोंतरफ
विभाति=भासता है	आत्मा=आत्मा
अस्मिन्={इसमेंयाने कोशोंमें	शुद्धः=शुद्धनिर्मल
	विज्ञायते=जानाजाताहै

भावार्थ ॥

रामजी कहते हैं, हे लक्ष्मण ! जैसे नील पीतादि वर्णोंवाले पुष्पोंके सम्बन्ध से स्फटिक भी नील पीतादि वर्णोंवाला प्रतीत होता है, श्वेत स्फटिक में नील पीतादिवर्ण कोई भी नहीं है, तैसे आत्मा भी निर्धर्मिक है, परंतु जिस २ कोशके साथ आ... सम्बन्ध होताहै तिस २ कोशके धर्म से युक्त प्रतीत हो... स्तव से आत्मा असंग है। तथा च श्रुतिः "असंगो... पुरुषः" यह पुरुष आत्मा असंग है ॥ अजोह्येको अज है याने अजन्मा है, और एक है, क्रिया से रहित है, निरवयव है, द्वैतसे रहित है, विचार करने से वह जानाजाताहै ॥ प्र० ॥ पांचकोशोंका स्वरूप क्या है और

उनका नाम क्या है॥ उ० ॥ अन्नमय,प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय, पांचकोशों के नाम हैं, अब उनके स्वरूपको दिखाते हैं॥ अन्नरसेनैवभूत्वा न्नरसेनैवाभिवृद्धिंसम्प्राप्यान्नरूप पृथिव्यांयद्विलीयते सोऽन्नमयकोशः॥ १॥ अन्नके रससे उत्पन्न होकर फिर अन्नके रस करकेही वृद्धिको प्राप्तहोकर अन्नरूप पृथिवीमेंही जो लयको प्राप्त होजावै उसीका नाम अन्नमय कोश है॥ १॥ कोश नाम तलवार के म्यानका है, उसीको खोल भी कहते हैं, जैसे तलवारके ऊपर का खोल होता है तलवार उसके भीतर रहती है, इसी तरह अन्नमय कोशके भीतर फिर प्राणमयकोश है, सो उसका यह लक्षण है॥ प्राणादिपञ्चवायवोवागादीन्द्रिय पञ्चकं प्राणमय कोशः॥ २॥ प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान ये प्राणादि पांच वायुहैं, और पाणि. पा[illegible] गुदा, उपस्थ, वाक् ये पांच कर्म इन्द्रियहैं [illegible] समुदाय का नाम प्राणमयकोश है, अन्नमयकोश से यह सूक्ष्म है, इसीवास्ते अन्नमयकोशके भीतर यह प्राणमयकोश रहता है॥ अब मनोमय कोश के स्वरूपको दिखाते हैं॥ मनश्चज्ञानेन्द्रिय पञ्चकंमिलित्वा मनोमयकोशः॥ मन, चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, रसना, त्वक् ये पांच ज्ञान इन्द्रिय हैं, इन छहों के

समुदायका नाम मनोमयकोश है, यह प्राणमयकोश से भी सूक्ष्म है, और उसके भीतर रहते हैं ॥ ३ ॥ अब विज्ञानमयकोशको दिखाते हैं ॥ बुद्धिज्ञानेन्द्रियपञ्चकं मिलित्वा विज्ञानमयकोशः ॥ ४ ॥ बुद्धि और पांचज्ञान इन्द्रिय इन छहोंका नाम विज्ञानमय कोश है, यह मनोमयसे सूक्ष्म है, और उसके भी अंतर है ॥ आनंदमयकोशको दिखाते हैं ५ प्रियमोदादि वृत्तिमत्स्वस्वरूपाज्ञानंयदस्ति तदानन्दमयकोशः ॥ प्रियमोदप्रमोदादि वृत्तिवाला जो अपने स्वरूपका अज्ञान है, सो उसीका नाम आनन्दमयकोश है, यह विज्ञानमय से सूक्ष्म है, और उसके भी अंतर है, अब इस आनन्दमयकोश के अन्तरात्माहै, ये पांचों कोश जड़ हैं, अनित्य हैं, आत्मा नित्य है, चेतन है, इन से परे है, इनका साक्षी है, विचार से जाना जाता है ॥ ३१ ॥

मूलम् ॥

बुद्धेस्त्रिधावृत्तिरपीहदृश्यते
स्वप्नादिभेदेनगुणत्रयात्मनः ॥
अन्योऽन्यतोऽस्मिन्व्यभिचारतोमृषा
नित्येपरेब्रह्मणिकेवलेशिवे ॥ ३२ ॥

पदच्छेदः ॥

बुद्धेः त्रिधा वृत्तिः अपि इह दृश्यते स्वप्नादिभेदेन गुणत्रयात्मनः अन्योन्यतः अस्मिन् व्यभिचारतः मृषा नित्ये परे ब्रह्मणि केवले शिवे ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
इह=यह	च=और
गुणत्रयात्मनः=त्रिगुणात्मिका	सा=सोई
बुद्धेः=बुद्धिकी	अन्योऽन्यतः=परस्पर
वृत्तिः=वृत्ति	व्यभिचारतः=व्यभिचारी होनेसे
स्वप्न[illegible]न=स्वप्नादिअवस्थाभेद करके	अस्मिन्=इस
त्रिधा=तीनप्रकार की	नित्ये=निरन्तर
	केवले=अद्वैत
दृश्यते=दिखाई देतीहैं	शिवे=आनन्दरूप

परे = सबसे परे	मृषा = असत्
ब्रह्मणि = { ब्रह्मआत्मा विषे	प्रतीयते = { प्रतीत होती है

भावार्थ ॥

रामजी कहते हैं, हे लक्ष्मण ! इस आत्मा में जो जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति भेद से तीन प्रकारकी वृत्ति याने अवस्था दिखाई पड़ती हैं, वह भी आत्मा की अवस्था नहीं हैं, किन्तु सत्त्व रज तम अर्थात् त्रि-गुणात्मिका जो बुद्धि है, तिसी की ये तीनों अवस्था हैं, बुद्धिका आत्माके साथ अनादि कल्पिततादात्म्याऽध्यास है, उसी अध्यास करके अन्यके धर्म अन्य में प्रतीत होते हैं, जैसे लोहे के पिण्ड को जब कि अग्नि में तपाया जाता है, तब लोहा अग्निरूप होजाता है, जब कोई पुरुष उस तपेहुये लोहे के पिण्ड को हाथ लगाता है, तब कहता है " अयो दहति " अर्थात् लोहा जलाता है, परन्तु जलाना धर्म्म लोहेका नहीं है, किन्तु अग्नि का है, सो लोहे में तादात्म्याऽध्यास करके प्रतीत होता है, और गोलाकार या पिण्डाकार धर्म अग्नि का नहीं है, किन्तु लोहे का है, सो भी अध्यास करके अग्नि में प्रतीत होता है, इसीप्रकार

तादात्म्याध्यास करके चेतनताधर्म आत्माका बुद्धिमें प्रतीत होताहै, और जो जाग्रत् अवस्थादि के कर्तृत्वादि धर्म हैं, वे बुद्धिके हैं, परन्तु आत्मा में प्रतीत होते हैं, वास्तव से आत्मा निर्धर्मक है, अर्थात् सम्पूर्ण धर्मों से रहित है ॥ प्रश्न ॥ अध्यास किसको कहते हैं ॥ उ० ॥ सत्यानृतवस्तुअभेदप्रतीतिरध्यासः ॥ सत्य और मिथ्या वस्तु की जो अभेद प्रतीतिहै, याने दोनोंकी एकरूपता करके जो प्रतीति है, उसीका नाम अध्यास है, सो सद्रूप आत्मा है मिथ्यारूप बुद्धि है, दोनों की अभेद प्रतीति का नामही अध्यास है, बुद्धि और आत्मा का ऐसा अभेद होरहा है, कि भेद करके उनका ज्ञान मूर्खों को नहीं होसक्ता है, वास्तव से तो वह अध्यास भी नित्यआत्मामें मिथ्याहै, अब दूसरी रीति से अध्यास के लक्षण को दिखाते हैं ॥ अतस्मिन् तद्बुद्धिस्तादात्म्याध्यासलक्षणम् ॥ अततमें तद् बुद्धि याने चेतन में जड़बुद्धि और जड़ में चेतनबुद्धि जो होती है, इसीकानाम तादात्म्याध्यासहै, सो दो प्रकार का है, एक तो " संसर्गाऽध्यास है " दूसरा "स्वरूपाध्यास है" सो दिखाते हैं ॥ अनात्मनिबुद्ध्यादौसाक्षिचैतन्यस्यसंसर्गाध्यासः ॥ अनात्मा जो बुद्धिआदिक हैं उनमें साक्षी चेतन संसर्गाध्यास है, अर्थात् बुद्धि

आदिकों के साथ जो सम्बन्ध है,वह आध्यासिक याने कल्पित सम्बन्ध है, और॥ साक्षिणिबुद्ध्यादेरनात्मनःस्वरूपाध्यासः ॥ साक्षिचेतन में बुद्धि आदिक अनात्मों का स्वरूपाध्यास है, याने चेतनमें बुद्धिआदिक स्वरूपसेही अध्यस्त हैं, अर्थात् कल्पित हैं, केवल आत्माही नित्य है॥ प्रश्न ॥ आत्माका क्या स्वरूप है, ॥ उत्तर ॥ अततिव्याप्नोतीत्यात्मा ॥ जो सब में व्यापकहो उसीका नाम आत्मा है ॥ दूसरा लक्षण " स्थूलसूक्ष्मकारणशरीराद्व्यतिरिक्तो अवस्थात्रयसाक्षी सच्चिदानन्दस्वरूपोयस्तिष्ठतिसआत्मा" स्थूल सूक्ष्म कारण इनतीनों शरीरोंसे भिन्न और जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तीनों अवस्थाका साक्षी जो सच्चित् आनन्द रूप करके स्थित है, वही आत्मा है। वह एकही आत्मा शरीररूपी उपाधियों के भेदकरके अनन्तरूप होकर संपूर्ण व्यवहारों को कररहा है, और जाग्रदादि अवस्था के भेद से एकही शरीर में भिन्न २ नामों वाला कहाजाता है, जब वह स्थूलशरीर और जाग्रत अवस्था का अभिमानी होता है, तब उसकानाम विश्व होता है, जब वह सूक्ष्मशरीर और स्वप्नअवस्थाका अभिमानी होता है, तब उसका नाम तैजस होता है, और जब वह सुषुप्तिअवस्था और कारण

शरीरका अभिमानी होता है, तब उसका नाम प्राज्ञ कहाजाता है। एकही आत्मा अवस्थाके भेद से भिन्न २ संज्ञावाला होजाता है, अब तीनों अवस्था के स्वरूप को दिखलाते हैं ॥ इन्द्रियजन्यज्ञानावस्था जाग्रदवस्था ॥ इन्द्रियों से जन्य वृत्ति ज्ञान की जो अवस्था है, उसका नाम जाग्रत् अवस्था है ॥ इन्द्रिया जन्यविषयगोचरापरोक्ष्यान्तःवृत्त्यवस्थास्वप्नावस्था ॥ इन्द्रियों से अजन्य विषयों को विषय करनेवाली परोक्ष अंतर्वृत्ति अवस्थाका नाम स्वप्नावस्था है ॥ सुखाविद्यागोचराविद्यावृत्त्यवस्थासुषुप्तावस्था ॥ सुखाकार अविद्याको विषय करनेवाली जो अविद्या की वृत्तिरूप अवस्था है, उसका नाम सुषुप्तिअवस्था है ॥ इन तीनों अवस्था से और तीनों शरीरों से आत्मा भिन्न है, और इन सबका साक्षी है ॥ ३२ ॥

मूलम् ॥

देहेन्द्रियप्राणमनश्चिदात्मनां
संघादजस्रंपरिवर्त्ततेधियः ॥
वृत्तिस्तमोमूलतयाऽज्ञलक्षणा
यावद्भवेत्तावदसौभवोद्भवः ॥ ३३ ॥

पदच्छेदः ॥

देहेन्द्रियप्राणमनश्चिदात्मनाम् संघात् अजस्रम् परिवर्तते धियः वृत्तिः तमोमूलतया अज्ञलक्षणा यावत् भवेत् तावत् असौ भवोद्भवः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
अजस्रम्	अनादिभूत
देहेन्द्रियप्राणमनश्चिदात्मनाम्	देहइन्द्रियप्राणमनचिदाभासके
संघात्	संयोग से
धियः	बुद्धिकी
वृत्तिः	वृत्ति
परिवर्तते	भ्रमती है
तमोमूलतया	तमोगुण प्रधानता करके
अज्ञलक्षणा	अज्ञानरूपी
असौ	यह वृत्ति
यावत्	जबतक
भवेत्	होवै है
तावत्	तबतक
भवोद्भवः	संसारकीउत्पत्तिहोवैहै

भावार्थ ॥

रामजी कहते हैं, हे लक्ष्मण! देह, इन्द्रिय, प्राण,

मन, और चिदाभासके संघात याने समुदाय के सम्बन्ध से रजोतमोगुणरूप अंतःकरणकी वृत्ति निरन्तरही उत्पन्न होती रहती है, वही वृत्ति अनात्मा में आत्म भावनाको और आत्मामें अनात्मभावनाको करानेवाली होती है, और जन्ममरणरूपी संसारचक्र में भी वही वृत्ति भ्रमानेवाली है, और अंतःकरणरूपी एक स्वच्छ तालहै, तृष्णारूपी वायु उसको सदैवकाल हिलाती रहती है, संकल्पविकल्परूपी वृत्तियें उसमें सदा उठती रहती हैं और अनन्त जन्मों के संस्कार उसमें भरेहैं, उन्हीं का नाम वासना भी है, जबतक वह संस्कार चित्तको हिलाते रहते हैं, तबतक अनेकप्रकार के बुद्बुदे तरंगरूपी वासना उठतीही रहती हैं, उन संस्कारोंके समग्ररूप करके नाश होजाने से फिर यह जीव जन्ममरणको प्राप्त नहीं होता है ॥ प्र० ॥ जीते जी तो समग्ररूप करके संस्कारों का नाश कदापि नहीं होसक्ताहै, क्योंकि जबतक मन संकल्पोंको करताहै, तबतक शरीर की भी चेष्टा होती है, जब मन संकल्पों का त्याग करदेगा, तब शरीर भी चेष्टा से रहित होकर गिर पड़ेगा, इसलिये समग्ररूपसे संस्कारों का याने वासनों का नाश कदापि नहीं होसक्ताहै ॥ उ० ॥ वासना दोप्रकारकी है, एक तो शुद्ध

वासना है, दूसरी मलिनवासनाहै, दोनों में से मलिन वासना जो है, वह जन्ममरणरूपी संसार का हेतुहै, अर्थात् जन्ममरण के करानेवाली है, और जो शुद्ध वासनाहै, वह जन्ममरणरूपी संसार का नाश करने वाली है, दोनों में से अशुद्धवासना का ही त्याग करना उचितहै,शुद्ध का त्याग करना उचित नहीं है॥ प्र०॥ अशुद्धवासना कौनहै, और शुद्धवासना कौन है॥ उ०॥ अनात्मा में आत्मभावना, देहादिकों में अहंभावना, स्त्री पुत्र धनादिकों में ममभावना, अर्थात् मैं देह हूं, मेरे इन्द्रियहैं, प्राण हैं, मेरी स्त्री है, मेरा पुत्र है, धन है, इनका नाश कदापि न हो, ये सब मेरे सदैव काल ज्योंके त्यों बने रहैं,मेरे शत्रु सब नष्ट होजायँ, मैं सदैवकाल जीतारहूं, संसार भर में कोई भी मेरी निंदा न करै, ये सब मलिनवासनाहै, क्योंकि पुत्रादिकों में अति स्नेह करने से चित्त पुष्ट होता है, चित्तके पुष्ट होने से वह बारबार जन्ममरण को प्राप्त होता है, यही अशुद्धवासना का फल है, अब शुद्धवासना को दिखाते हैं, संसार बड़ा दुःखरूप है, इसकी निवृत्ति कब होगी, मैं कब आत्मसुखको प्राप्तहूंगा, मेरा मन कब सब में आत्मभावनाको करैगा, मैं शास्त्र, वेदमें विश्वास करूं, महात्माका सदैवकाल संग करूं,

किसी के भी अवगुणों को न देखूं, इसप्रकार स्त्री पुत्रादिकों में अहंता ममतासे रहित होना, ये सब शुद्ध वासना हैं, ये वासना विद्वान् की भी याने चतुर्थभूमिकावाले ज्ञानीकी भी बनी रहती हैं, और इसीलिये शरीर का पातनहीं होता है ॥ ३३ ॥

मूलम् ॥

नेतिप्रमाणेननिराकृताऽखिलो
हृदासमास्वादित चिद्घनामृतः ॥
त्यजेदशेषं जगदात्तद्रसम्
पीत्वायथाऽम्भःप्रजहातितत्फलम् ३४

पदच्छेदः ॥

न इति प्रमाणेन निराकृताखिलः हृदा समास्वादितचिद्घनामृतः त्यजेत् अशेषम् जगत् आत्तद्रसम् पीत्वा यथा अम्भः प्रजहाति तत्फलम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
न इति	=नेति नेति	प्रमाणेन	=श्रुतियोंके प्रमाणद्वारा

हृदा=अन्तःकरणसे

निराकृताखिलः = { निराकरण कियाहैसंपूर्ण जगत् को जिसने

च=और

समास्वादितचिद्घनामृतः = { सम्यक् आस्वादन कियाहै चिद्घनरूपी अमृत जिसने ऐसा पुरुष

अशेषम्=संपूर्ण

जगदात्तद्रसम् = { जगत् में प्राप्त हुये रसको

त्यजेत्=त्याग देवै

यथा=जैसे

पुरुषः=पुरुष

अम्भः=रसजल

पीत्वा=पीकरके

तत्फलम्= { उसके फलको

प्रजहाति=छोड़देता है

भावार्थ ॥

रामजी कहते हैं, हे लक्ष्मण! "नेति नेति" इस वेदवाक्य के प्रमाण करके निराकरण कर दिया है, अर्थात् मिथ्या जानलिया है, सम्पूर्ण जगत्को जिसने, और अपने शुद्ध मन करके स्वाद ले लियाहै, ब्रह्मानन्दरूपी अमृतको जिसने, ऐसा जो विद्वान् है, वह फिर सम्पूर्ण जगत् को त्याग देता है, जैसे तृषा करके

मुक्त पुरुष नारिकेलके रसको पान करके उसके बकले को त्याग देता है, तैसेही विद्वान्भी सम्पूर्ण जगत् का सारांश जो ब्रह्मसुख है, उसको पान करके असाररूप जगत्को त्याग देताहै, फिर उसका ग्रहण कदापि नहीं करता है, जबतक भयकी संभावना जिस पदार्थ से होती है, तबतक उसके त्यागकी इच्छा रहती है, जब भयकी संभावना हटजाती है, तब फिर ग्रहण त्याग की इच्छाभी नहीं रहती है, जबतक द्वैतकी प्रतीति होती है, तबतक उसके त्यागनेकी भी इच्छा रहती है, जिसकालमें द्वैतका अभाव होजाता है, उस कालसे त्यागकी इच्छा का और भयका अभाव होजाता है, फिर विद्वान् अपने आत्मानन्द करके नित्यतृप्त रहता है॥ तिस आत्मानन्दसे परे और कोईभी आनन्द नहीं है, वह आनन्दसमुद्ररूप है, उस आनन्द के एक बूंद को लेकर सारा जगत् आनन्दवाला होता है, विद्वान् उसी महान्आनन्दमें नित्यही तृप्त रहताहै॥ ३९॥

मूलम्॥

कदाचिदात्मानमृतोनजायते
नक्षीयतेनापिविवर्धतेनवा॥

निरस्तसर्वातिशयःसुखात्मकः
स्वयंप्रभःसर्वगतोऽयमद्वयः॥३५॥

पदच्छेदः॥

कदाचित् आत्मा न मृतः न जायते न क्षीयते न अपि विवर्धते न वा निरस्तसर्वातिशयः सुखात्मकः स्वयंप्रभः सर्वगतः अयम् अद्वयः॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
आत्मा	आत्मा	आत्मा	आत्मा
कदाचित्	कभी	निरस्त सर्वाति शयः	सर्व विशेषता से रहित
न मृतः	न मरा है	सुखात्मकः	सुखरूप है
न जायते	न पैदा हुआ है	स्वयंप्रभः	स्वयंप्रकाश है
न क्षीयते	न क्षीण होता है	सर्वगतः	सर्वव्यापक है
न अपि विवर्धते	न बढ़ता है	अद्वयः	अद्वय है
अयम्	यह		

भावार्थ ॥

रामजी कहते हैं, हे लक्ष्मण! यह आत्मा न तो जन्मता है, और न मरता है ॥ प्र० ॥ जब आत्मा जन्मता मरता नहीं है, तब लोग क्यों कहते हैं, देवदत्त जन्मा, यज्ञदत्त मरा ॥ उ० ॥ शरीररूपी उपाधि जन्मती मरती है, उसके सम्बन्धसे अज्ञानीलोग आत्मामें कल्पना करते हैं, श्रुति भी कहती है " न जायते म्रियते वा " आत्मा न जन्मता है, न मरता है, हमेशा एकरस ज्यों का त्यों है ॥ जब जन्मता नहीं है, तब क्षयभी नहीं होताहै, और न बढ़ताहै, जो वस्तु उत्पन्न होतीहै, वही घटती बढ़ती है, जैसे शरीर सो आत्मा ऐसा नहीं है, किन्तु "जायते, अस्ति, वर्द्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते, विनश्यति " उत्पन्न होना, उत्पन्न होकर रहना, बढ़ना, बदलना, घटना, नाश होजाना, यह छः विकारहैं, आत्मा इन छवों विकारोंसे रहितहै, वह निर्विकार है, और देहादिकोंसेभी परे है, और देहादिकों का भी साक्षी है, वही आत्मा ब्रह्मरूपभी है ॥ ३५ ॥

मूलम् ॥

एवंविधेज्ञानमयेसुखात्मके

कथंभवोदुःखमयःप्रतीयते ॥

अज्ञानतोऽध्यासवशात्प्रकाशते
ज्ञानेविलीयेतविरोधतःक्षणात् ३६॥

पदच्छेदः॥

एवम् विधे ज्ञानमये सुखात्मके कथम् भवः दुःखमयः प्रतीयते अज्ञानतः अध्यासवशात् प्रकाशते ज्ञाने विलीयेत विरोधतः क्षणात्॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
एवम्विधे	इसप्रकार		(जवाब)
ज्ञानमये	ज्ञानमय	अज्ञानतः	अज्ञानकृत संसार
सुखात्मके	सुखरूप आत्माके विषे	अध्यास वशात्	अध्यास के वश्य से
दुःखमयः	दुःखमय	प्रकाशते	भासता है और
भवः	संसार	ज्ञाने	ज्ञानहोने पर
कथम्	कैसे	विरोधतः	विरोध के कारण
प्रतीयते	प्रतीत होता है	क्षणात्	एक क्षण में
		विलीयेत	नाशहोताहै

भावार्थ ॥

लक्ष्मणजी कहते हैं, हे महाराज ! आपने आत्मा को पूर्व सुखरूप और असंग कहा है, तिस सुखरूप आत्मामें दुःखरूप संसार कैसे बन सक्ता है, सो मेरे प्रति कृपाकरके कहिये॥ रामजी कहते हैं, हे लक्ष्मण ! अज्ञानमूलक जो अध्यासहै, वही सुखरूप आत्मा में दुःखरूप जगत् को बनादेता है ॥ प्रथम अध्यासके स्वरूपको दिखलाते हैं ॥ पारमार्थिकत्वावच्छिन्नस्वाऽत्यंताभावाधिकरणेप्रतीयमानत्वमध्यासत्वम् ॥ पारमार्थिक सत्ताकरके युक्त जो आत्मा है, तिस आत्मा में ॥ स्वाऽत्यंताभावाधिकरणे ॥ स्वसत्ता करके जो जगत् है, तिस जगत् का जो अत्यन्ताभाव है, अर्थात् जो तीनों कालमें वास्तव से है नहीं, पर प्रतीत होता है, उसीका नाम अध्यास है, तिस अध्यासका मूल कारण अज्ञान है, सो अज्ञान अनादि है, क्योंकि वेदांत सिद्धांत में छःवस्तु अनादि मानेगये हैं ॥ जीवेशौविशुद्धश्चित्तथा जीवेशयोर्भिदः ॥ अविद्यातच्चितोर्योगःषडस्माकमनादयः ॥ १ ॥ जीव, ईश्वर, शुद्धचेतन, जीव ईश्वरका भेद, अविद्या, अविद्याचेतनका भेद, यह षट्पदार्थ अनादि हैं ॥ इनमें से एक शुद्धचेतन तो अनादि अनंत है, और बाकी के पांच अनादि सांत हैं, इस वास्ते इन

की आपत्ति याने प्राप्ति भी नहीं होसक्ती है॥प्र०॥जो अनादिहो,और सांत याने अंतवाला या नाशवाला हो, उसमें दृष्टांत कौन है ॥ उ० ॥ नैयायिकों के मतमें प्रागभाव अनादि भी है, और सांत भी है, क्योंकि घटोत्पत्ति से पूर्व मृत्तिकामें घटका प्रागभावहै, वह प्रागभाव अनादि है, घटकी उत्पत्ति होनेसे तिस प्रागभाव का नाश होजाताहै, तैसे अज्ञानादिक भी अनादि है, आत्मज्ञान के होनेपर सहितकार्यरूप अध्यास के अज्ञान का भी नाश होजाता है ॥ प्र० ॥ तब तो जीव ईश्वर भी नाशी हुआ सांत होने से॥ उ० ॥जीव ईश्वर दोनों स्वरूप से सांत नहीं हैं, चेतनभाग से नित्य हैं, किंतु जीवत्व और ईश्वरत्व जो कल्पित धर्म हैं, याने माया अविद्याके सम्बन्ध से जो दो धर्म कल्पना किये गये हैं, वे सांत हैं, क्योंकि उन धर्मोंका कल्पिक याने कल्पना करानेवाली माया अविद्या दोनों उपाधि सांत हैं, उपाधियों के सांत होने से उपाधेय जो चेतन है, जिसका भी उपाधियों ने भेद करदिया है, वह सांत कदापि नहीं होसक्ता है, जैसे घटमठरूपी उपाधियों ने महाकाश से घटाकाश और मठाकाशरूप दो प्रकारका भेद बनादिया है, और घटमठरूपी उपाधियों के नाश होनेसे घटाकाश, मठाकाश का नाश नहीं

होता है किंतु घटाकाशत्व, मठाकाशत्वरूप धर्मों के सहित उपाधियों के नाश होनेपर, घटाकाश मठाकाश भी महाकाशरूपही होजाता है, तैसे जीव ईश्वरकी उपाधि जो माया और अविद्या है, तिसके नाश होने पर, जीवत्व ईश्वरत्व दोनों धर्मोंका भी नाश होजाता है, क्योंकि दोनों उपाधियों ने ही दो धर्म बनारखे थे, जब उपाधियों के अभाव होजाने से धर्मोंका भी अभाव होजाताहै, तब उपाधेय जो चेतन भाग है, उस का शुद्ध चेतनसे अभेद होजाता है, और तभी वही जीव ईश्वर स्वरूप होजाताहै, वह नित्यहै, और सुख रूप है, उसीकी प्राप्तिके लिये शास्त्रोक्त प्रयत्न भी सिद्ध होजाता है, वही अनादि अनंत है, उसी अधिष्ठान चेतनके ज्ञानसे अज्ञानका नाश होजाता है, अज्ञान के नाशसे अध्यास का भी नाश होता है, अध्यासके नाश से संसारका अभाव भी होजाता है ॥ ३६ ॥

मूलम् ॥

यदन्यदन्यत्र विभाव्यते भ्रमा
दध्यासमित्याहुरमुंविपश्चितः ॥
असर्पभूतेऽहिविभावनं यथा
रज्ज्वादिके तद्वदपीश्वरे जगत् ३७॥

पदच्छेदः ॥

यत् अन्यत् अन्यत्र विभाव्यते भ्रमात् अध्यासम् इति आहुः अमुम् विपश्चितः असर्पभूते अहिविभावनम् यथा रज्ज्वादिके तद्वत् अपि ईश्वरे जगत् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
यत्	जो
भ्रमात्	भ्रमसे
अन्यत्	और का और
विभाव्यते	प्रतीत होताहै
अमुम्	उसको
विपश्चितः	पंडित
अध्यासम्	अध्यास
इति	करके
आहुः	कहते हैं

अन्वयः	शब्दार्थ
यथा	जैसे
असर्पभूते	सर्परहित
रज्ज्वादिके	रज्जुआदिकविषे
अहिविभावनम्	सर्पका भी न होनाहै
तद्वत्	तैसेही
ईश्वरे	ईश्वरविषे
जगत्	जगत्
भ्रमात्	भ्रमसे
विभाव्यते	भासताहै

भावार्थ ॥

श्रीरामचन्द्रजी फिर अध्यासको कहते हैं ॥ यद्न्यदन्यत्रविभाव्यतेभ्रमादध्यासमित्याहुः॥भ्रमसे अन्य वस्तु की अन्यमें जो प्रतीति होनी है, उसीका नाम अध्यास है,॥ इसीप्रकार का अध्यास का लक्षण भाष्यकारोंने भी कियाहै ॥ परत्रपरावभासत्वमध्यासत्वम् ॥ दूसरे की दूसरे में प्रतीति होनी इसीका नाम अध्यास है, सो अध्यास दोप्रकारका है, उसको पहिले दिखादिया है, वास्तव से अध्यासका नामही भ्रमहै, सो भ्रम दोप्रकारकाहै, एक सोपाधिक भ्रमहै,दूसरा निरुपाधिक भ्रम है, स्फटिकमणि में जहांपर रक्तपुष्पके समीप रखने से रक्तताकी प्रतीति होती है, वहांपर सोपाधिक भ्रम कहलाता है, क्योंकि रक्तपुष्परूपी उपाधि की रक्तता भ्रान्ति करके स्फटिकमणि में प्रतीति होती है, और जहांपर शुक्तिमें रजत भ्रान्तिकरके प्रतीत होता है, वहांपर निरुपाधिक भ्रम कहलाता है; क्योंकि वहांपर विनाही उपाधिके शुक्तिमें रजतका भान होताहै, "दार्ष्टांत" आत्मामें जो कर्तृत्वादि धर्म प्रतीत होते हैं, सो सोपाधिक भ्रम है, क्योंकि अंतःकरणरूपी उपाधि वहांपर आत्माके समीप विद्यमान है, और शुद्धब्रह्म में जो जगत् की प्रतीति होती है, वह निरुपाधिक भ्रमहै,

क्योंकि ब्रह्ममें वास्तव से जगत् है नहीं, यदि होता तब उसकी उपाधि माननी पड़ती, इसलिये यह निरुपाधिक भ्रम है, जैसे असर्परूपरज्जु में भ्रम करके सर्पकी प्रतीति होती है, तैसे अजगत्रूप ब्रह्ममें भ्रांति करके जगत्की प्रतीति होती है, इसलिये जगत् तीनों काल में मिथ्या है ॥ ३७ ॥

मूलम् ॥

विकल्पमायारहितेचिदात्मके
हंकारएषः प्रथमः प्रकल्पितः ॥
अध्यासएवात्मनिसर्वकारणे
निरामये ब्रह्मणि केवले परे ॥ ३८ ॥

पदच्छेदः ॥

विकल्पमायारहिते चिदात्मके अहंकारः एषः प्रथमः प्रकल्पितः अध्यासः एव आत्मनि सर्वकारणे निरामये ब्रह्मणि केवले परे ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
विकल्प माया रहिते	विकल्प मायासे रहित
चिदात्मके	चैतन्यरूप
सर्वकारणे	सबका कारण
निरामये	दुःखरहित
केवले	अद्वैत
परे	उत्कृष्ट
ब्रह्मणि	व्यापक

अन्वयः	शब्दार्थ
आत्मनि	आत्मा में
एषः	यह
अहंकारः	अहंकार
प्रथमः	प्रथम
प्रकल्पितः	कल्पना कियाहुआ
अध्यासः एव	अध्यास ही है

भावार्थ ॥

रामजी कहते हैं हे लक्ष्मण ! मायारूपी विकल्प से रहित जो चिदात्मा है, तिस चिदात्मा में कल्पित अनादि माया के सम्बन्ध से प्रथम अहंकार जो फुरा है, वही अहंकार ही अध्यास है. तिसी अहंकार करके "ब्राह्मणोऽहं" "क्षत्रियोऽहं" "वैश्योऽहं" "शूद्रोऽहं" मैं ब्राह्मण हूं. मैं क्षत्रियहूं, मैं वैश्यहूं. मैं शूद्रहूं. ऐसी कल्पना आत्मा में फुरनेलगती है. तिसीसे वह आत्मा जीवभाव को प्राप्त होकर बध्यायमान होजाता है.

वास्तव से यह आत्मा न ब्राह्मण है, न क्षत्रिय है, न वैश्य है, न शूद्रहै, किंतु मायामल से रहित केवल शुद्धस्वरूप एकरस ज्यों का त्यों है " देवीभागवत में लिखाहै " शुद्धोमुक्तःसदैवात्मानवैबध्येतकर्हिचित् ॥ बंधमोक्षौमनस्संस्थौतास्मिन् शान्ते प्रशाम्यतः॥१॥ आत्मा सदैवकाल शुद्ध है, मुक्तहै, वह कदापि बंधायमान नहीं होताहै, बन्ध और मोक्ष दोनों मनमें रहते हैं; तिस मनके शान्त होने से बन्ध मोक्षभी शान्त होजाते हैं ॥ श्रुति भी कहती है " नैवस्त्रीनपुमानेष नचैवाऽयं नपुंसकः " न वह स्त्री है, न पुरुष है, और न वह नपुंसक है अर्थात् स्त्री पुरुषादि धर्मों से वह रहित है , किन्तु केवल चैतन्यरूप अपनी महिमा में स्थित है ॥ ३८ ॥

मूलम् ॥

इच्छादिरागादिसुखादिधर्मिकाः
सदा धियः संसृतिहेतवः परे ॥
यस्मात् सुषुप्तौ तदभावतःपरः
सुखस्वरूपेणविभाव्यतेहिनः॥३९॥

पदच्छेदः ॥

इच्छादिरागादिसुखादिधर्मिकाः सदा धियः संसृतिहेतवः परे यस्मात् सुपुप्तौ तदभावतः परः सुखस्वरूपेण विभाव्यते हि नः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
यस्मात्	जिसकारण
परे	शुद्ध आत्मा विषे
इच्छादि रागादि सुखादि धर्मिकाः	इच्छा राग सुखदुःखादि धर्म वाली
धियः	बुद्धियां
सदा	नित्य
संसृति हेतवः	सृष्टि के कारण हैं
तस्मात्	तिसी लिये

अन्वयः	शब्दार्थ
सुपुप्तौ	सुपुप्ति अवस्था में
तदभावतः	उन बुद्धियों के अभाव होने से
परः	परमात्मा
सुखस्वरूपेण	सुखस्वरूप करके ही
नः	हमको
विभाव्यते	प्रकाशित होता है

भावार्थ ॥

हे लक्ष्मण ! आत्मामें इच्छा उपेक्षा रागद्वेष पुण्य पाप कर्तृत्व भोक्तृत्वादि जो प्रतीत होते हैं, सो ये सब धर्म्म बुद्धिके हैं, आत्माके नहीं हैं, आत्मा निर्धर्मकहै, वे सब अध्यास करके आत्मामें प्रतीत होते हैं, सुषुप्ति अवस्था में जब बुद्धि अपने कारण अज्ञान में लीन होजाती है, तब बुद्धि के धर्म जो रागद्वेषादिकहैं, वे भी सब उसके साथही लीन होजाते हैं, और केवल सुखरूप आत्माकाही सुषुप्तिअवस्थामें भान होता है ॥ प्र० ॥ यह कैसे जाना जाता है कि सुषुप्ति अवस्था में केवल सुखरूप आत्माकाही भान होताहै ॥ उ० ॥ अनुमान प्रमाण करके यह जानाजाता है, क्योंकि जिसकाल में सुषुप्ति से पुरुष उठता है, तब कहता है " सुखमस्वाप्संनकिञ्चिदवेदिषम् " मैं ऐसा सुखपूर्वक सोया कि मैं कुछ भी न जानता भया, ऐसा सुखका स्मरण सब पुरुषोंको होता है, जो २ स्मृतिज्ञान होताहै, सो २ अनुभव पूर्वकही होता है, अर्थात् जिसका प्रथम अनुभव होता है, उसी का पीछे स्मरण भी होता है, इसलिये सुषुप्ति से अनन्तर स्मृति ज्ञान है, अर्थात् मैं ऐसा सुखसे सोया कि कुछ भी बाहर का हाल न जानताभया यह जो

सुषुप्तिकालकेलीन सुखका स्मरण है, सो भी अनुभव पूर्वकही है, सुषुप्तिकाल में जो आत्मसुखका अनुभव हैं, उसी का यह स्मरण हैं, इसी से सिद्ध होता है कि सुषुप्तिअवस्था में बुद्धिआदिक सब लय होजाते हैं, और उनके धर्म भी सुख दुःखादिक सब लय होजाते हैं, केवल आत्माही सुखरूप उसकालमें रहता है, इसी से सिद्ध होता है कि रागादिक सब बुद्धि के धर्म हैं, और जन्म मरणादिक भी सब बुद्धिकेही धर्म हैं आत्मा के नहीं हैं, किन्तु आत्मा नित्यसुखरूप है ॥ ३९ ॥

मूलम् ॥

अनाद्यविद्योद्भवबुद्धिबिम्बितो
जीवः प्रकाशोयमितीर्यते चितः ॥
आत्माधियःसाक्षितयापृथक्स्थितो
बुद्ध्यापरिच्छिन्नपरःसएवहि ॥४०॥

पदच्छेदः ॥

अनाद्यविद्योद्भवबुद्धिबिम्बितः जीवः प्रकाशः अयम् इति ईर्यते चितः आत्मा धियः साक्षितया पृथक् स्थितः बुद्ध्या अपरिच्छिन्नपरः सः एव हि ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अनाद्यविद्योद्भवबुद्धिबिम्बितः	अनादि अविद्या से उत्पन्न हुई जो बुद्धि है उसमें प्रतिबिम्बित हुआ	ईर्यते	कहाजाता है
		सएवहि	सोई
		आत्मा	आत्मा
		बुद्ध्या	बुद्धि से
		अपरिच्छिन्नपरः	अपरिच्छिन्न परे
		धियः	बुद्धि का
अयम्	यह	साक्षितया	साक्षी होने के कारण
चितः	चैतन्य का		
प्रकाशः	प्रकाश		
जीवः	जीव	पृथक्	पृथक्
इति	करके	स्थितः	स्थित है

भावार्थ ॥

लक्ष्मणजी श्रीरामजी से पूछते हैं कि महाराज आपने पूर्व माया और अविद्या करके जीव ईश्वर के भेदको कहा है, परन्तु जीव ईश्वर के स्वरूप को आपने नहीं कहा है, सो कृपा करके जीव ईश्वर के

स्वरूपको अब कहिये ॥ रामजी कहते हैं हे लक्ष्मण! अनाद्यविद्योद्भवबुद्धिबिंबितोजीवः ॥ अनादि जो अविद्या है, उस अविद्या से उत्पन्न हुआ जो अंतःकरण है, तिस अंतःकरण में प्रतिबिंबित जो चेतन है, उसी का नाम जीव है, अर्थात् जीव चेतन है, मायामें प्रतिबिंबित चेतनाका नाम ईश्वर है, माया अविद्या दोनों उपाधियों से रहित चेतनका नाम शुद्ध चेतन ब्रह्म है, यह एक आचार्य का मत है, ॥ दूसरेका मत ऐसा है ॥ अज्ञानोपहितंबिंबचैतन्यमीश्वरः ॥ १ ॥ अज्ञानहै उपाधि जिसकी ऐसा जो बिंबचेतन है, उसका नाम ईश्वर है ॥ १ ॥ अन्तःकरणतत्संस्कारावच्छिन्नाज्ञानप्रतिबिंबितंचैतन्यंजीवः ॥ २ ॥ अंतःकरण और संस्कारों करके युक्त जो अज्ञान है, उसमें प्रतिबिंबित जो चेतनहै, उसका नाम जीव है यह विवरणकार का मत है ॥ २ ॥ अज्ञानप्रतिबिंबितंचैतन्यमीश्वरः ॥ अज्ञान में प्रतिबिंबित चेतनका नाम ईश्वर है ॥ बुद्धिप्रतिबिंबितंचैतन्यंजीवः ॥ बुद्धिमें प्रतिबिंबित चेतनका नाम जीव है ॥ अज्ञानोपहितंबिनाचैतन्यंशुद्धम् ॥ अज्ञान उपाधि से रहित चेतनका नाम शुद्ध चेतन है, यह संक्षेप शारीरककार का मत है ॥ इन दोनों पक्षों में बुद्धियों के नाना होनेसे जीव भी नाना हैं, वास्तव

से जीव नाना नहीं हैं, इसीका नाम प्रतिबिंब वादभी कहाजाता है, इन दोनों मतोंमें अज्ञान एकहै उसके अंश नाना हैं, अब वाचस्पति के मतके अनुसार जीव ईश्वर के स्वरूपको दिखलाते हैं ॥ अज्ञानविष-यीभूतंचैतन्यमीश्वरः ॥ अज्ञान का विषयीभूत जो चेतन है, उसका नाम ईश्वर है ॥ अज्ञानाश्रयीभूतं चैतन्यंजीवः ॥ और अज्ञान का आश्रयीभूत जो चे-तनहै, उसका नाम जीव है, इस मतमें अज्ञान नाना हैं, इसवास्ते जीव भी नाना हैं, इसीका नाम अवच्छेद वाद है, ॥ अब एकजीववाद को दिखलाते हैं ॥ अ-ज्ञानोपहितबिंबचैतन्यमीश्वरः ॥ अज्ञान है उ-पाधि जिसकी ऐसा जो बिंबचेतनहै, उसका नाम ईश्वर है, ॥ अज्ञानप्रतिबिंबितंचैतन्यंजीवः ॥ अज्ञान में जो चेतनका प्रतिबिंब है, उसका नाम जीव है, इस मतमें एकही जीव है, और एकही ईश्वर है, यही वेदांतका मुख्य सिद्धांत है, तिस एकजीववादमें किसी का यह मतहै कि जीव एकही है, एकही जीवके होने से एकही शरीर सजीव है, याने जीवात्मावाला है, बाकी के शरीर सब स्वप्न के शरीरों की तरह निर्जीव हैं, ॥ प्र० ॥ एकही शरीर को सजीव कहना सम्भवै नहीं, क्योंकि जैसे एक शरीर में इष्टानिष्टकी प्राप्ति

के लिये चेष्टा होती है, तैसे दूसरे शरीरों में भी होती है, इससे एक शरीरको सजीव कहना असंगत है, ॥ उ० ॥ जैसे स्वप्नकालमें स्वप्नके द्रष्टा की दृष्टिसे स्वप्न के जीव मनुष्य हस्ती घोड़े आदिक सब चेष्टावाले प्रतीत होते हैं, पर वास्तव से वे सब निर्जीव हैं, तैसेही जाग्रतके जीवकी दृष्टि से जाग्रत्के सब जीव चेष्टावाले प्रतीत होते हैं, वास्तव से वे सब निर्जीव हैं, और जैसे स्वप्नका कल्पक निद्रादोष है, तैसे जाग्रत् का कल्पक अज्ञान है, फिर जबतक निद्रारूपी दोष दूर नहीं होता है, तबतक स्वप्नका व्यवहार प्रतीत होता रहता है, तैसेही जबतक आत्मज्ञान करके अज्ञानका नाश नहीं होता है, तबतक जाग्रत् का भी सर्व व्यवहार होताही रहता है, अज्ञान के नाश होने पर फिर व्यवहार नहीं होता है, और जैसे स्वप्न से उठा स्वप्नरूपी भ्रांति करके सिद्ध जो स्वप्न के कल्पित पुरुष आदिक हैं, उनकी मुक्ति को दूसरे के प्रति कहता है तैसेही जीव की भ्रान्ति करके सिद्ध जो शुकादिकों की मुक्ति होगई है, उसको जीव के प्रति शास्त्र बोधन करता है, जैसे स्वप्न का द्रष्टा स्वप्नमें गुरु और ईश्वर की कल्पना करके उनकी उपासनाको करताहै, और उनसे विद्या आदि फलको

प्राप्त होता है, तैसेही जाग्रत् का द्रष्टा जीव भी जाग्रत् में गुरु ईश्वर को कल्पना करके उनसे विद्या आदि फलको प्राप्त होताहै, इस रीति से बंध मोक्षकी व्यवस्था भी बनजाती है, इस प्रकार कहेहुये एक आचार्य्य का मत है ॥ १ ॥ अब दूसरे आचार्य्य के मतको एक जीववादमें दिखलाते हैं, दूसरा आचार्य्य प्रथम आचार्य्य के प्रति शंका करता है, आपने कहा है, एक शरीर सजीव है, याने जीवात्मा के सहित है, और बाकीके शरीर निर्जीव हैं, याने जीवात्मा से रहित हैं, ऐसी कल्पना नहीं बनसक्ती है, केवल एकी शरीर में जीव रहता है दूसरों में नहीं रहता है, इस वार्त्ता को सिद्धकरनेवाली कोई भी युक्ति नहीं मिलती है, ॥ यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवीशरीरम् ॥ जो परमात्मा पृथिवीमें स्थित होकर पृथिवीके अन्तर रहताहै, जिसको पृथिवी नहीं जानती है, और जिसका शरीर पृथिवी है, ॥ योऽप्सुतिष्ठन्नद्भ्यो ऽन्तरोयमापोनविदुः ॥ जो जलमें स्थित होकर जलको प्रेरणा करताहै, और जल जिसको नहीं जानता है, ॥ यआत्मनितिष्ठन् ॥ जो जीवात्माके अंतर रहकर जीवात्माको प्रेरणा करता है, और जिसको जीव नहीं जानताहै, वही ऊपर के कहेहुये श्रुति अनुसार ईश्वर है,

वही जीव से भिन्न है, वही इस जगत् का कर्त्ता है, जीव जगत्का कर्त्ता नहीं है, इससे यह वार्त्ता सिद्धहुई कि ब्रह्मरूप जीव नहीं है, किंतु ब्रह्मका प्रतिबिंबरूप हिरण्यगर्भही एक मुख्यजीव है, और बिंबरूप ईश्वर तिससे भिन्न है, सोई हिरण्यगर्भ रूप जीव भौतिक जगत्का अर्थात् भूतोंका कार्यरूप जो जगत् है, तिसका कर्त्ता है, वही कारणोपाधिक भी कहाजाता है, तिसी हिरण्यगर्भरूपी मुख्यजीव के अपरजीव सब प्रतिबिंबरूप हैं, जैसे चित्रमें लिखेहुये जो मनुष्यों के शरीर हैं, और उनपर जो वस्त्रादिक भासते हैं, उन्हीं के तुल्य हिरण्यगर्भरूप जीवसे इतर सब जीव जीवाभासरूपहैं, वेही संसारी हैं, जैसे हिरण्यगर्भका शरीर मुख्यजीवसे सजीव है, तैसेही अपरजीवों के शरीरभी जीवाभासरूप जीवों से सजीव हैं, इसी प्रकार एकजीववादमें और भी अनेक मत हैं, उन सब मतों का सिद्धांत यही है, कि जीव एकही है, बाकी के सब जीवाभास हैं, तीसरा एकजीववादी कहता है, कि हिरण्यगर्भ हरएक कल्पमें जुदा २ होताहै, तब फिर किस हिरण्यगर्भको मुख्यजीव मानना चाहिये, जब अनेक कल्पों में अनेक हिरण्यगर्भ होचुके हैं, तब एकजीवका निर्णय होना भी असंभव है, हिरण्यगर्भ

के निर्णय के असंभव से यह कथन नहीं बनता है कि एकही हिरण्यगर्भ का शरीर सजीव है, और बाकी के जीवाभास हैं, किंतु अविद्या में जो ब्रह्म चेतनका प्रतिबिंबहै, वही एकजीव है, अविद्याके एक होनेसे वह जीव भी एकही कहाजाता है, वही एक जीव भोगके लिये सब शरीरोंको आश्रयण करता है, उसी एक जीवके प्रतिबिंबरूप और सब जीव हैं, उन प्रतिबिंबाभासरूप जीवों से बाकी के सब जीव सजीवहैं, एकजीवको मानकर जो मुख्य अमुख्य जीवों की कल्पनाहै, सो असंगत है, ॥ प्र० ॥ यदि एकही जीव को सब शरीरों में मानोगे तो जैसे देवदत्तको अपने एकही शरीरमें शिरकी पीड़ा का और पादके सुखका ज्ञान होताहै, तैसेही देवदत्तके शरीरके सुखका और यज्ञदत्तके शरीरके दुःखका ज्ञान भी सबको होना चाहिये, क्योंकि जीव तो सब शरीरों में एकही है ॥ उ० ॥ जैसे पूर्व जन्मके शरीरमें और इस वर्त्तमान शरीरमें जीव एकही है, पर पूर्व जन्म के शरीर के सुख दुःखका ज्ञान होता नहीं है, इसवास्ते सुख दुःख के ज्ञानाभावका साधक शरीर का भेद है, जीवका भेद नहीं है, तैसेही सब शरीरों में जो सुख दुःख है, उस के भी ज्ञानके अभावका साधक शरीरकाही भेद है,

जीव का भेद नहीं है, सर्व शरीरों में जीव एकही है, शरीरों के भेदसे सबके सुख दुःखका ज्ञान एकको नहीं होताहै, एकजीववादमें मतभेद को दिखादिया, अब अनेकजीववाद में मतभेद को दिखाते हैं ॥ तद्यो योदेवानांप्रत्यबुध्यतसएवतदभवत ॥ यह श्रुति कहती है ॥ देवतों में से जिस जिस देवताने ब्रह्मको साक्षात्कार किया है, वही वही ब्रह्मरूपको प्राप्त हुवा है दूसरा नहीं हुवाहै, और श्रुति में ज्ञानीको मुक्त और अज्ञानी को बंध कथन किया है, यदि एकही जीव मानाजावै तब एक के मुक्त होने से सबको मुक्त होजाना चाहिये, या एक के बंध होने से सबको बंध होना चाहिये, सो तो नहीं होताहै, श्रुति और युक्ति के साथ विरोध होने से एकजीववाद असंगत है, किंतु अनेकजीववादही समीचीन है, और अनेकजीववाद में कोई भी दोष नहीं आता है, क्योंकि जीव की उपाधि जो अंतःकरण है, सो अनेक हैं, और इसीकारण अन्तःकरणरूपी उपाधिवाले जीव भी अनेक हैं, और अंतःकरणों का उपादानकारण जो मूलाज्ञान है सो एक है, सो अज्ञान शुद्धब्रह्म के आश्रितहै, और तिसीको विषय भी करता है, सो मूलाज्ञान अंशोंवाला है, ज्ञान करके जिन अंशों यानें जिन अंतः-

करणकी निवृत्ति होती है, वही जीव मुक्त होजाता है, बाकी के नहीं होते हैं, दूसरे अनेकजीववादी के मत को दिखाते हैं, वह कहता है जीव चेतनका जो अज्ञान से सम्बन्ध है उसीका नाम बंधहै, तिस अज्ञान के असंबंधका नामही मोक्ष है, अर्थात् अज्ञान के संबंधका निवृत्त होजानाही मोक्ष है, अज्ञानके संबंध के न रहने से बंध भी नहीं रहता है, यदि इसरीति से बंध मोक्ष की व्यवस्था को नहीं मानोगे, तब फिर जैसे अग्निका तूलके एक अंशके याने अवयवके साथ सम्बन्ध होने से समग्र तूल जल जाती है, तैसे मूलाज्ञान का विरोधी जो आत्मज्ञान है, उसके उदय होने से अज्ञानका अंश जो अंतःकरण है, उसके साथ सम्बन्ध होने से संपूर्ण अज्ञान भी जल जावैगा, याने नाशको प्राप्त होजावैगा, तब एकको ज्ञान होने से जीवमात्रको मोक्ष होजावैगा, जीवमात्रको मोक्षहोनेसे संसारका भी अभाव होजावैगा, इसलिये अज्ञान के सम्बन्धकी निवृत्ति को ही मोक्ष मानो, तथा च श्रुतिः॥ भिद्यते हृदयग्रन्थिः॥ आत्मज्ञानके उदय होने से हृदय की ग्रन्थि भेदन होजाती है, इस श्रुति में हृदयपद से अंतःकरण का ग्रहणहै, वही अंतःकरण मनहै, तिसका नाशक ब्रह्मबोध याने ज्ञान है, उस अज्ञानके संबंधका

नियामक मन है, मनके नाश होने से अज्ञानका संबंधभी छूटजाता है, और मन अनंत हैं, इसवास्ते एक मनके नाश होने से बाकीके सब बने रहते हैं, जिसका मन नष्ट होगया है, वह मुक्त होगया, बाकीके बन्धायमान बने रहते हैं ॥ अब अपर नाना जीववादी के मतको दिखाते हैं ॥ अपर अनेक जीववादी कहताहै, शुद्ध ब्रह्म अज्ञानका विषय है, आश्रय नहींहै, किंतु जीवही अज्ञानका आश्रय है, "अहमज्ञः" मैं अज्ञहूं "ब्रह्म न जानामि" मैं ब्रह्मको नहीं जानताहूं, इसी अनुभव से जीवही अज्ञान का आश्रय सिद्ध होता है, अन्तःकरण अनेक हैं, तिनमें प्रतिबिम्बरूप जीव भी अनेक हैं, जैसे एकही जाति अनेक व्यक्ति में रहती है, तैसे एकही चेतन अनेक जीवों में रहता है, जिसअन्तःकरण में ज्ञान उपजे है, उसज्ञान करके मनकी निवृत्ति होजाती है, मनके निवृत्त होने से तिसमें जो प्रतिबिम्ब है, उसकी भी निवृत्ति होजाती है, याने वह जीव ब्रह्ममें मिल जाताहै, जैसे जलके सूख जाने से सूर्य का प्रतिबिम्बभी अपने बिम्ब में लीन हो जाता है, सोई अपर नाना जीववादीका यह मत है, अज्ञान नाना हैं, अज्ञानोपाधिक जीव भी नाना हैं, जिस जीवके अज्ञान का नाश आत्मज्ञान करके हो

जाता है, वह मुक्त होजाता है, जिसको आत्मज्ञान नहीं हुआ है, वह वन्ध है ॥प्र०॥ जीव ईश्वर के स्वरूपमें आपने अनेक मत कहे हैं, किसका मत समीचीन है, और किसका असमीचीन है ॥ उ० ॥ सभी मत समीचीन हैं, जिसको जिस मत से आत्माका यथार्थ वोध होजावै उसके लिये वही मत समीचीन है, क्योंकि सवका तात्पर्य आत्मा के स्वरूप के ज्ञान में है, यह जीव ब्रह्मरूप है, यही सर्व मतों का सिद्धान्त है, किसी मतसे भी हे लक्ष्मण! तुम अपने को ब्रह्म मानो, विना अपनेको ब्रह्मरूप जानने से कदापि मोक्ष नहीं होता है "ऋतेज्ञानान्नमुक्तिः" ज्ञान से विना मुक्ति कदापि नहीं होती है, और अपने को ब्रह्मरूप ही, निश्चय करने का नाम ज्ञान है ॥ ४० ॥

मूलम् ॥

चिद्बिम्बसाक्ष्यात्मधियांप्रसंगत

स्त्वेकत्रवासा द नलाक्तलोहवत् ॥

अन्योन्यमध्यासवशात्प्रतीयते

जडाजडत्वंचचिदात्मचेतसोः ४१॥

पदच्छेदः ॥

चिद्बिम्बसाक्ष्यात्मधियाम् प्रसंगतः तु एकत्र वासात् अनलाक्तलोहवत् अन्योन्यम् अध्यासवशात् प्रतीयते जडाजडत्वम् च चिदात्मचेतसोः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
चिदात्मचेतसोः	चेतन आत्मा और अन्तःकरणका	प्रसंगतः	संगसे
		तु	पुनः
		एकत्र	एकजगह
अन्योन्यम्	परस्पर	वासात्	रहने से
अध्यासवशात्	अध्यास होनेसे	अनलाक्तलोहवत्	अग्नि लोहवत्
च	और		
चिद्बिम्बसाक्ष्यात्मधियाम्	आत्माचिदाभाससाक्षि और अंतःकरण	जडाजडत्वम्	जडचैतन्य भाव
		प्रतीयते	प्रतीतहोताहै

भावार्थ ॥

आत्मज्ञान की दृढ़ता के लिये फिर रामजी लक्ष्मणजी के प्रति अध्यास का निरूपण करते हैं ॥ रामजी कहते हैं, हे लक्ष्मण! चैतन्यस्वरूप आत्माका बुद्धि के साथ अनादिकल्पित तादात्म्याऽध्यास है, अर्थात् परस्पर दोनों के धर्म अग्निलोहवत् अध्यास के प्रभाव से उलटे प्रतीत होते हैं, आत्माकी चेतनता बुद्धि में प्रतीत होती है, और बुद्धिकी जड़ता आत्मा में प्रतीत होती है, जैसे अग्नि विषे तपाये हुये लोहेमें दाहकत्व और प्रकाशकत्व शक्ति आजाती है, और लंबाई चौड़ाई आदिक जो लोहेके धर्महैं,सो अग्नि में अध्यासवश प्रतीत होने लगतेहैं,तैसे चेतनतादिक आत्माके धर्म भी अध्यासकरके बुद्धिमें प्रतीत होतेहैं,और कर्तृत्व भोक्तृत्वादिक बुद्धिकेधर्म अध्यास करके आत्मामेंप्रतीत होते हैं आत्मा वास्तव से अकर्त्ता अभोक्ता है,॥ प्र०॥नैयायिकलोक कर्तृत्व भोक्तृत्वादिकों को आत्मा के ही स्वाभाविक धर्म मानते हैं, यह उनका मानना ठीकहै वा नहीं ॥ उ० ॥ नैयायिकों का मानना श्रुति और युक्ति विरुद्ध है, इसीवास्ते वह मिथ्यावादी हैं, उनका मानना ठीक नहीं है ॥ तथाच श्रुतिः "असंगोऽयं पुरुषः" यह पुरुष जो आत्माहै, सो असंग है, अर्थात्

धर्मों के सम्बन्ध से रहित है, इसप्रकार अनेक श्रुतियें आत्माको अकर्त्ता कहती हैं, और जिसप्रकार युक्ति से भी विरुद्ध है सो दिखाते हैं, सुख दुःख कर्तृत्वादिक आत्मा के सोपाधिक धर्म हैं या निरुपाधिक याने स्वाभाविक धर्म हैं, यदि सोपाधिक मानोगे तो हमारामत सिद्ध होजावैगा, नैयायिक का मत खंडन होजायगा, क्योंकि बुद्धिरूपी उपाधिकृत कर्तृत्वादिक आध्यासिक धर्मोंको हम भी मानते हैं, यदि निरुपाधिक मानोगे, तब मोक्षका अभाव होजावैगा, क्योंकि जो निरुपाधिक याने स्वाभाविक धर्म होते हैं, उनकी निवृत्ति कदापि नहीं होती है, जैसे अग्निका स्वाभाविक धर्म उष्ण है, उसकी निवृत्ति नहीं होती है, तैसे आत्माके भी स्वाभाविकसुख दुःखादि धर्मोंकी निवृत्ति नहींहोगी, तब मोक्षके प्रतिपादक वाक्य भी सब निष्फल ही होजावैंगे, इसलिये आत्मा निर्धर्मकहै, अर्थात् आत्मा में स्वाभाविक कर्तृत्वादिक धर्म नहीं हैं, नैयायिक मिथ्यावादीहै ॥ प्र० ॥ सांख्यमतवाले आत्मा को असंग तो मानते हैं, परंतु भोक्ताभी मानतेहैं, कर्त्ता नहीं मानते हैं, किन्तु प्रकृतिको ही कर्त्ता मानते हैं, उनका मत कैसाहै ॥ उ० ॥ सांख्यवालों का मानना भी ठीक नहीं है, क्योंकि वह जड़ प्रकृति को कर्त्ता मानते हैं ॥

जो जड़ है, वह कदापि कर्त्ता नहीं होसक्ता है, जैसे घटादिक जड़हैं, वह कर्त्तानहीं हैं, कर्त्ता उनसे भिन्न चेतन कुलाल है, तैसेही जड़ जगत् का कर्त्ता भी जड़ जगत्से भिन्न चेतन ईश्वर है, और जो सांख्यी जीवात्माको भोक्ता मानते हैं, कर्त्ता नहीं मानते हैं, यह भी उनका मानना असंगत है, क्योंकि ऐसा नियम है, कि जो अनुभव का कर्त्ता होताहै, वही स्मृति का भी कर्त्ता होता है, और जो पुरुष किसी पदार्थको देखता है, तिसी को तिस पदार्थ का स्मरण भी होता है, दूसरे को तिसका स्मरण नहीं होता है, जो कर्म को करता है, वही उस पुण्य पापरूप कर्म के फलको भी भोगताहै, यदि ऐसा न माना जावैगा, तब कर्मोंका भी संकर होजावैगा, दूसरे करके करेहुये कर्मोंका फल दूसरेको मिलने से अन्याय होजावैगा, और ऐसालोक में देखते भी नहीं हैं,इसीसे जाना जाताहै, कि सांख्यी मिथ्यावादी हैं, उनका मत भी ठीक नहीं है, ॥प्र०॥ तुम्हारे मत में भी तो बुद्धि जड़ है, और उसी को तुम कर्त्ता भोक्ता मानते हो, सो कैसे बन सक्ताहै, ॥ उ० ॥ हमारे मत में दोष नहीं आता है, क्योंकि हम स्वतः बुद्धिको कर्त्ता नहीं मानते हैं, किंतु जैसे चुम्बक पत्थर के समीप लोहा स्वतःही चेष्टा करताहै, और चुम्बक

चेष्टा से रहित रहता है, तैसे आत्मा के साथ बुद्धिका कल्पित सम्बन्ध होने से बुद्धिभी स्वतःही कर्तृत्व भोक्तृत्वादि व्यवहार को करती है, आत्मा साक्षीरूप हो करके केवल प्रकाशही करता है, इसीवास्ते साक्षीका लक्षण भी किया है, कर्त्ता को और संपूर्णक्रियाओं को और विषयों को एककालमेंही विना किसीकी सहायताके जो प्रकाश करे उसीकानाम साक्षी है, सो आत्मा चैतन्यस्वरूप बुद्धि आदिकों का भी साक्षी और प्रकाशक है, वही जानने योग्य है ॥ ४१ ॥

मूलम् ॥

गुरोः सकाशादपि वेदवाक्यतः
संजातविद्यानुभवो निरीक्ष्य तम् ॥
स्वात्मानमात्मस्थमुपाधिवर्जितं
त्यजेदशेषंजडमात्मगोचरम् ४२॥

पदच्छेदः ॥

गुरोः सकाशात् अपि वेदवाक्यतः संजातविद्यानुभवः निरीक्ष्य तम् स्वात्मानम् आत्मस्थम् उपाधिवर्जितम् त्यजेत् अशेषम् जडम् आत्मगोचरम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
गुरोः	गुरुके	उपाधिवर्जितम्	उपाधिरहित
सकाशात्	पासरहनेसे	तंस्वात्मानम्	अपने आत्माको
अपि	और	निरीक्ष्य	देखकरके
वेदवाक्यतः	वेदके महावाक्यों से	आत्मगोचरम्	आत्माविषे भासमान
संजातविद्यानुभवः	उत्पन्न हुआ है आत्मा का अनुभव जिसको ऐसा पुरुष	अशेषम्	संपूर्ण
आत्मस्थम्	अन्तःकरणमें स्थित	जडम्	जड़को
		त्यजेत्	त्यागदेवै

भावार्थ ॥

रामजी लक्ष्मणजी के प्रति कहते हैं हे लक्ष्मण! उस साक्षी शुद्धस्वरूप अपने आत्मा को जानना उचित है, सो प्रथम गुरुके समीप जाकर उनकी सेवा पूजा करके उनसे आत्मविषयक प्रश्नों को करै, जो गुरु साधनों करके युक्त हो, ब्रह्मनेष्ठी हो, ब्रह्मश्रोत्

हो, उसी से अपने संशयों को दूरकरके महावाक्यों को श्रवण करके फिर उनका मनन करके आत्माके साक्षात्कारको प्राप्त होवैं, अर्थात् अपने को नित्यशुद्ध बुद्ध सर्वका अधिष्ठान सर्व का-साक्षी चैतन्यस्वरूप निश्चयकरके संसार में जीवन्मुक्त होकर विचरें ॥४२॥

मूलम् ॥

प्रकाशरूपोहमजोहमद्वयः
सकृद्विभातोहमतीव निर्मलः ॥
विशुद्धविज्ञानघनोनिरामयः
सम्पूर्णआनंदमयोहमक्रियः ४३॥

पदच्छेदः ॥

प्रकाशरूपः अहम् अजः अहम् अद्वयः सकृद्विभातः अहम् अतीव निर्मलः विशुद्धविज्ञानघनः निरामयः सम्पूर्णः आनन्दमयः अहम् अक्रियः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अहम्=मैं		अहम्=मैं	
प्रकाशरूपः=प्रकाशरूपहूं		अजः=अज हूं	

अद्वयः=अद्वैत हूं	निरामयः=दुःखरहितहूं
सकृद्विभातः=एकप्रकाशमानहूं	सम्पूर्णः=सर्वव्यापीहूं
अहम्=मैं	आनन्दमयः=आनन्दघनहूं
अतीव=अत्यन्तही	
निर्मलः=निर्मलहूं	अहम्=मैं
विशुद्ध विज्ञान घनः = विशुद्धविज्ञानघनहूं	अक्रियः=क्रियारहितहूं

भावार्थ ॥

पूर्व रामजी ने लक्ष्मणजी के प्रति सोपाधिक आत्मा के स्वरूप का वर्णन कियाहै, अब निरुपाधिक आत्मा के स्वरूप को दो श्लोकों करके दिखाते हैं॥ हे लक्ष्मण! ज्ञानवान् को ऐसा निश्चय होताहै "स्वप्रकाशोऽहं" मैं स्वप्रकाशहूं "अजोऽहं" मैं अजन्माहूं "अद्वयोऽहं" मैं द्वैतप्रपञ्चसे रहितहूं, द्वैतप्रपञ्च सब मेरेमें कल्पित है, मैं सबका अधिष्ठानहूं, फिर मैं अतिशय करके शुद्धहूं, अर्थात् मायामल से रहितहूं, और नित्य विज्ञानघनहूं॥ और निरामयहूं, याने रोगादिकोंसे भी मैं रहित हूं, आनन्दरूप हूं, अक्रिय याने क्रियादिकों से भी मैं रहित हूं॥ ४३॥

पदच्छेदः ॥

एवम् सदा आत्मानम् अखंडितात्मना विचारमाणस्य विशुद्धभावना हन्यात् अविद्याम् अचिरेण कारकैः रसायनम् यद्वत् उपासितम् रुजः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
एवम्	इसप्रकार	अविद्याम्	अविद्याको
अखंडितात्मना	एकरस बुद्धिकरके	हन्यात	नाश करै है
सदा	निरंतर	यद्वत्	जैसे
आत्मानम्	आत्माको	कारकैः	कुशलवैद्यों करके
विचारमाणस्य	विचारतेहुये पुरुषकी	उपासितम्	सिद्धकीहुई
विशुद्धभावना	शुद्ध भावना	रसायनम्	रसओषधी
अचिरेण	शीघ्रही	रुजः	रोगोंको
		हन्यात्	नाश करती है

भावार्थ ॥

रामजी कहते हैं हे लक्ष्मण ! इसप्रकार आत्मा

का निरन्तर एक रस जब ध्यान कियाजाता है, तब ब्रह्माकारचित्तकी वृत्ति तैलधारावत् लगातार बहती है, और तभी वह ब्रह्माकारवृत्ति अविद्या और अविद्याकेकार्य कर्म को जो जन्मजन्मान्तरका हेतु है नाशकरदेतीहै, जैसे सेवन करीहुई रसायनरूपी ओषधि सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करदेती है, तैसेही आत्मविद्या भी अविद्या का नाश करदेती है,॥ सो कहा भी है॥ नगच्छतिविनापानंव्याधिरौषधशब्दतः। विनापरोक्षाऽनुभवंब्रह्मशब्दैर्नमुच्यते॥ जैसे विना सेवन ओषधिके केवल नामलेने से व्याधि दूर नहीं होती है, तैसेही विना अपरोक्ष अनुभव के याने विना आत्माके साक्षात्कारकरनेके केवल "ब्रह्म ब्रह्म" ऐसे शब्द कहने से मुक्ति नहींहोती है॥४५॥ मूलम्॥

विविक्तआसीनउपारतेन्द्रियो
विनिर्जितात्माविमलान्तराशयः॥
विभावयेदेकमनन्यसाधनो
विज्ञानदृक्केवलआत्मसंस्थितः ४६॥

पदच्छेदः॥

विविक्तः आसीनः उपारतेन्द्रियः

विनिर्जितात्मा विमलान्तराशयः विभावयेत् एकम् अनन्यसाधनः विज्ञानदृक् केवलः आत्मसंस्थितः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
विविक्तः	= एकान्तविषे	अनन्य साधनः	= नहीं है दूसरा साधन जिसको
आसीनः	= स्थितहुआ है जो	केवलः	= केवल
उपारतेन्द्रियः	= उपराम हुई हैं इन्द्रियां जिसकी	आत्मसंस्थितः	= अपने आत्मामेंस्थित है जो ऐसा
विनिर्जितात्मा	= जीता है मनको जिसने	विज्ञानदृक्	= ज्ञानदृष्टिवाला पुरुष
विमलान्तराशयः	= शुद्धहुआ है अंतःकरण जिसका	एकम्	= एक अपने आत्माको
		विभावयेत्	= अनुभवकरे

भावार्थ ॥

ऐसे वाक्य करके रामजीने आत्मा के ध्यानको

संसारकी निवृत्तिका कारण कहाहै, अब उस ध्यान की विधिको कहते हैं, हे लक्ष्मण! निर्जन याने एकांतदेश में पद्मासन वा सिद्धासन को लगाकर बैठे और संपूर्ण इन्द्रियों को अपने २ व्यापारों से रोकै, अर्थात् विषयों की तरफसे इन्द्रियों की वृत्तियों को हटावै, और पूरक कुम्भक रेचक प्राणायाम करके अपने मन को आत्मामें लगावै, अर्थात् आत्मामें मनकी वृत्तिके प्रवाहको करै, पुनः २ मनको अंतरमुख करनेसे जब आत्माकार मन होजाता है, तब वह ध्यान कहाजाताहै॥ प्र०॥ निराकार निरवयव इन्द्रियों का अविषय जो आत्माहै, तिसका ध्यान कैसे होसक्ताहै॥ उ०॥ ध्यानंतुद्विविधंप्रोक्तं स्थूलसूक्ष्मविभेदतः। साकारं स्थूलमित्याहुर्निराकारंतुसूक्ष्मकम्॥ ध्यान दो प्रकारका कहा है एक स्थूल दूसरा सूक्ष्म, दोनोंमेंसे साकार वस्तु का जो ध्यान है, वह स्थूलध्यान कहा है, और जो निराकार वस्तु का ध्यान है, वह सूक्ष्म ध्यान कहा है, और व्यासभाष्य में भी कहा है॥ तद्द्विविधंसगुणंनिर्गुणञ्चेति सगुणंमूर्त्तिध्यानंनिर्गुणमात्म्ययाथात्म्यम्॥ १॥ ध्यान दो प्रकारकाहै, एक सगुण ध्यान है, दूसरा निर्गुण ध्यानहैं, मूर्त्तिके ध्यानका नाम सगुण ध्यान है, आत्माका यथार्थरूपसे ज्ञान होना अथवा

साक्षात्कार होनेका नाम निर्गुण ध्यान है, सो प्रथम बिना सगुण ध्यान करके निर्गुण का ध्यान नहीं होसक्ता है, इसी वास्ते योगसूत्र में भी कहाहै ॥ यथा ॥ यथाभिमतध्यानाद्वा ॥ जो वस्तु अपने को अभिमत हो याने अतिप्यारीहो उसका ध्यानकरै, राम कृष्णादिकों की मूर्त्ति में या किसी देवताकी मूर्त्तिमें अथवा किसी मनुष्य की मूर्त्तिमें चित्तके जोड़ने का नामही सगुण ध्यानहै, इसीका नाम सविकल्प समाधि भी है, सविकल्पसमाधि में ध्याता ध्यान ध्येय अर्थात् ध्यान करने वाला ध्यानाकारवृत्ति और ध्येय वस्तु जिसका ध्यान कियाजाताहै, वे तीनों बराबर प्रतीत होते हैं, जब स्थूल वस्तुका ध्यान करते २ चित्त की वृत्ति सूक्ष्म हो कर केवल ध्येयाकार स्थिर होजाती है, तब केवल प्रकाशस्वरूप सुखस्वरूप आत्माही का प्रकाश रहता है, और वृत्ति के सहित मनभी लय होजाता है, तिसी का नाम निर्विकल्प समाधि है, सो योगके ग्रन्थ में कहा है। वृत्तिहीनंमनःकृत्वाक्षेत्रज्ञंपरमात्मनि॥ एकीकृत्यविमुच्येतयोगोयंमुख्यउच्यते ॥ १ ॥ मनको वृत्तियों से रहित करके और जीवात्मा और परमात्मा की एकता को साक्षात् करके पुरुष मुक्त होजाता है, यही मुख्ययोग कहाहै ॥ यह तो चित्तकी वृत्तिका निरोधरूप

ध्यानयोग कहाहै, दूसरा ज्ञानयोग करके ध्यान कहा है॥ यत्सर्वप्राणिहृदयंसर्वेषांचहृदिस्थितम् ॥ यच्चसर्वजनैर्ज्ञेयंसोहमस्मीतिचिन्तयेत् ॥ १ ॥ जो सम्पूर्ण प्राणियों का अपना आपहै, और जो सबके हृदय में स्थित है, और जो सम्पूर्ण पुरुषों करके जानने योग्य है, सोई परमात्मा मैं हूं, ऐसे नित्य राग द्वेष से रहित चिन्तन का नाम ध्यान है ॥ ४६ ॥

मूलम् ॥

विश्वं यदेतत्परमात्मदर्शनं
विलापयेदात्मनिसर्वकारणे ॥
पूर्णश्चिदानन्दमयोऽवतिष्ठते
नवेदबाह्यंनचकिंचिदान्तरम्॥४७

पदच्छेदः ॥

विश्वम् यत् एतत् परमात्मदर्शनम् विलापयेत् आत्मनि सर्वकारणे पूर्णः चिदानन्दमयः अवतिष्ठते न वेद बाह्यम् न च किञ्चित् आन्तरम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यत्	जो	पूर्णः	पूर्ण
एतत्	यह	चिदानन्दमयः	चैतन्यआनन्दमय
विश्वम्	विश्वरूप	अवतिष्ठते	अवशेष रहताहै
परमात्मदर्शनम्	परमात्मदर्शन है	ततः	उससे
तत्	उसको	बाह्यम्	बाहर
सर्वकारणे	सर्वके कारण	च	और
आत्मनि	आत्मामें	आन्तरम्	भीतर
यद्	जब	किंचित् न वेद	कुछभी नहींजान पड़ता है
विलापयेत्	लीनकरै		
तदा	तब		
केवलः	केवल		

भावार्थ ॥

रामजी कहते हैं, हे लक्ष्मण! यह जो विद्यमान प्रतीयमान जगत् है, इसका परमात्माही प्रकाशक है, और उसीकी सत्ता करके यह भी सत्यवत् भान होता है, वास्तव में यह जगत् सत्य नहीं है, असत्यरूप हुआ

दुःखका हेतु है; इसको परमात्मा में इसप्रकार लय करै, पृथिवी को जल में लयकरै, क्योंकि पृथिवी का कारण जल है, जलसे पृथिवी उत्पन्न होती है,कारण से भिन्न कार्यकी स्वतः सत्ता कुछभी नहीं है, इसलिये पृथिवी जलरूपही है, इसीतरह जल अग्निका कार्य्य है, अग्निसे अतिरिक्त जल की अपनी सत्ता कुछ भी नहीं है, अग्निरूपही जल है, वायुका कार्य्य अग्नि है, वायुसे भिन्न अग्निकी अपनी सत्ता कुछभी नहीं है, वायुरूपही अग्नि है, नामरूप सब मिथ्या है, वायु आकाशका कार्य्य है, आकाश से भिन्न वायुकी अपनी सत्ता कुछभी नहीं है, आकाशरूपही वायु है, आकाश काकार्य माया है,मायासे भिन्न आकाश कोई वस्तु नहीं है, आकाशको माया में लयकरै;माया चेतन में अध्य-स्तहै, याने कल्पित है, कल्पितवस्तु अधिष्ठान से भिन्न नहीं होती है, मायाको चेतन ब्रह्म में लयकरै, ॥ प्र० ॥ वह माया ब्रह्मसे भिन्न है, या अभिन्न है, यदि भिन्न मानोगे,तब द्वैतापत्ति याने द्वैतकी प्राप्ति होजावैगी, एक तो मायाहुई, दूसरा ब्रह्महुआ, और अभिन्न भी नहीं कहसक्ते हैं, क्योंकि माया जड़ है,ब्रह्म चेतन है,जड़ चे-तन का अभेद कदापि नहीं होसक्ता है, ॥ उ० ॥ वह माया न सत्य है, और न असत्य है, न सावयव है, न

निरवयव है, न ब्रह्मसे भिन्न है, न अभिन्न है, ॥ सत्य इस वास्ते नहीं है कि ज्ञानकरके उसका नाश होजाता है, असत् इसवास्ते नहीं है कि कार्यद्वारा उसकी प्रतीति होती है, सावयव इसवास्ते नहीं है कि अनादि है, सावयव पदार्थ अनादि होता नहीं है, पर उससे सावयव कार्य की उत्पत्ति होती है, और ब्रह्मसे भिन्न इस वास्ते नहीं है कि उसकी अपनी कोई सत्ता नहीं है, अभिन्न इसवास्ते नहीं कि मिथ्या सत्तासे है, वह माया अनिर्वचनीय है, और इसीकारण द्वैत की प्राप्ति नहीं होसक्ती है, चेतनकी दमक का नाम ही माया है, जब मायाको चेतनब्रह्म में लयकरके अपने पूर्ण आनन्द रूपमें ऐसा लय होजावे कि बाह्य और अन्तरके पदार्थों का कुछ भी ज्ञान न रहे, तब वह जीवन्मुक्त कहाजाता है ॥ ४७ ॥

मूलम् ॥

पूर्वंसमाधेरखिलं विचिन्तये
दोंकारमात्रंसचराचरंजगत् ॥
तदेववाच्यंप्रणवोहिवाचको
विभाव्यतेऽज्ञानवशान्नबोधतः ४८

पदच्छेदः॥

पूर्वम् समाधेः अखिलम् विचिन्तयेत् ॐकारमात्रम् सचराचरम् जगत् तत् एव वाच्यम् प्रणवः हि वाचकः विभाव्यते अज्ञानवशात् न बोधतः॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
समाधेः	समाधिसे	प्रणवः	ॐकार
पूर्वम्	पूर्व	वाचकः	जगत् का वाचक है
अखिलम्	सम्पूर्ण	च	और
सचराचरम्	स्थावरजंगमरूप	तत्एव	वह जगत् ॐकार का
जगत्	संसारको	वाच्यम्	वाच्य है
ॐकारमात्रम्	ॐकार मात्रही	तत्एव	सोभी
विचिन्तयेत्	चिंतन करै	अज्ञानवशात्	अज्ञान वशसे
हि	क्योंकि		

विभाव्यते = कहाजाता है	बोधतः = ज्ञान से न = नहीं

भावार्थ ॥

रामजी कहते हैं, हे लक्ष्मण! पूर्व कथन करी हुई जो निर्विकल्प समाधि है तिससे पहले सम्पूर्ण चर अचर जगत् को ॐकारमात्र चिंतन करै, क्योंकि यह जगत संपूर्ण ॐकारका वाच्य है, और ॐकार उसका वाचक है, ऐसी भावना भी अज्ञान के वश से ही होती है, आत्मबोध से नहीं होती है, किंतु आत्मबोध करके उस भावनाकाभी अभाव होजाता है ॥ ४८ ॥

मूलम् ॥

अकारसंज्ञः पुरुषोहिविश्वको
ह्युकारकस्तैजसईर्यतेक्रमात् ॥
प्राज्ञोमकारःपरिपठ्यतेऽखिलैः
समाधिपूर्वंनतुतत्त्वतोभवेत्४९॥

पदच्छेदः ॥

अकारसंज्ञः पुरुषः हि विश्वकः हि उकारकः तैजसः ईर्यते क्रमात् प्राज्ञः

मकारः परिपठ्यते अखिलैः समाधिपूर्वम्
न तु तत्त्वतः भवेत् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
हि	निश्चयकरके
क्रमात्	क्रमसे
विश्वकः	विश्व
पुरुषः	पुरुष
अकारसंज्ञः	अकार संज्ञक
अखिलैः	सब बुद्धिमानों करके
ईर्यते	कहाजाता है
तैजसः	तैजससंज्ञक
उकारकः	उकार करके
च	और

अन्वयः	शब्दार्थ
प्राज्ञः	प्राज्ञसंज्ञक
मकारः	मकार करके
परिपठ्यते	कहाजाताहै
+इति	ऐसा
समाधिपूर्वम्	समाधि से पूर्व
भवेत्	होताहै
तत्त्वतः	वास्तव से यानी समाधिकेपश्चात्
नतु	नहीं

भावार्थ ॥

रामजीने पूर्वले वाक्यकरके यह वार्ता सिद्धकिया कि ॐकारका वाच्य जगत् है, और ॐकार उसका वाचक है, ऐसी भावना भी निर्विकल्प समाधि से पूर्व

होतीहै, आत्मबोध के अनन्तर नहीं होती है, जिसतरह निर्विकल्प समाधि से पूर्व होतीहै उसको दिखाते हैं ॥ ॐकार में अकार उकार मकार ये तीनवर्ण हैं, उनकी उपासना करनी इसरीति से चाहिये ॥ जाग्रत्अवस्था का स्वामी जो विश्व है, उसको ॐकार का जो आदि अक्षर अकार है, उस अकार का वाच्यार्थ जानै, और अनुभव करै कि जाग्रत्अवस्था का अभिमानी देवता जो विश्व है सोई मैंहूं, और समष्टि स्थूल उपाधि का अभिमानी देवता जो विराट् है, तिससे मैं अभिन्न हूं, स्वप्नअवस्थाका स्वामी जो तैजसहै उसका ॐकार का दूसरा वर्ण जो उकार है उसका वाच्यार्थ जानै, और ऐसा अनुभव करै कि स्वप्नअवस्था का अभिमानी देवता जो तैजसहै सो मैंहीं हूं, और सूक्ष्म समष्ट्यु-पाधि जो हिरण्यगर्भ है तिससे मैं अभिन्नहूं अर्थात् वह हिरण्यगर्भ मेराही स्वरूप है, और सुषुप्तिअवस्था का अभिमानी जो प्राज्ञ है सो ॐकार का तीसरा वर्ण जो मकार है तिसका वाच्यार्थ जानै, और ऐसा अनुभव करै कि सुषुप्तिअवस्था का अभिमानी जो प्राज्ञ देवता है सो मैंहूं, और मायोपाधिक जो ईश्वर है तिससे मैं अभिन्नहूं ॥ ये तीनों भावना भिन्न भिन्न रूपवाली समाधि से पूर्वही करनी कही हैं, और

माण्डूक्य उपनिषद् में इसका जो फल कहा है सो दिखाते हैं ॥ जैसे समष्टि जाग्रतअवस्थाका स्वामी वैश्वानर सत्का आदि कारण है, और सम्पूर्ण जगत में व्याप्त है, तैसेही ॐकारका आदि अक्षर अकार भी सब वर्णोंका आदि है, और सब अक्षरों में व्याप्त है, इसीसे अकारका जो वाच्य पुरुष है याने विश्व है, तिसका वैश्वानरके साथ अभेद करके ध्यान जो करता है, सो सम्पूर्ण कामनाको प्राप्त होता है, और वह फिर सबका आदि कारण भी होता है, इसीरीति से उकार का वाच्य जो तैजसहै, उसको जो हिरण्यगर्भ के साथ अभेद करके उपासना करनेवाला है, वह विद्याको प्राप्त होता है, और मकार का वाच्य जो प्राज्ञ है उसको जो ईश्वर के साथ अभेद करके उपासना करनेवाला है, वह ईश्वर को प्राप्त होता है, और जो अमात्र ॐकारकी उपासना करनेवाला है, याने ॐकार में ब्रह्मका अभेद करके ध्यान करनेवाला है, वह निर्गुण ब्रह्मको प्राप्त होता है ॥ ४१ ॥

मूलम् ॥

विश्वंत्वकारंपुरुषं विलापये
दुकारमध्येबहुधाव्यवस्थितम् ॥

ततोमकारेप्रविलाप्यतैजसं
द्वितीयवर्णंप्रणवस्यचान्तिमे५०॥

पदच्छेदः॥

विश्वं तु अकारम् पुरुषम् विलापयेत् उकारमध्ये वहुधा व्यवस्थितम् ततः मकारे प्रविलाप्य तैजसम् द्वितीयवर्णम् प्रणवस्य च अन्तिमे॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
वहुधा	= वहुत प्रकारसे	प्रणवस्य	= प्रणवके
व्यवस्थितम्	= स्थितहुये	द्वितीय वर्णम्	= द्वितीयवर्ण
विश्वम्	= विश्वसंज्ञक	तैजसम्	= तैजसको
अकारम्	= अकार	च	= भी
पुरुषम्	= पुरुषको	अन्तिमे	= पिछले अक्षर
उकारमध्ये	= उकार में	मकारे	= मकारमें
प्रविलाप्य	= लीनकरके		
ततः	= उसके पीछे	विलापयेत्	= लीनकरे

भावार्थ ॥

श्रीरामजी कहते हैं हे लक्ष्मण! अकार का वाच्य जो विश्व याने विराट्रूप है, उसको उकार का वाच्य जो हिरण्यगर्भ तैजसरूप है, तिसमें लयकरै, अर्थात् विश्वको भी हिरण्यगर्भ का रूप देखै, ॥ इसीप्रकार उकारका वाच्य जो हिरण्यगर्भ तैजसहै, तिसको मकार का वाच्य जो ईश्वर है तिसमें लयकरै, अर्थात् तिसी का रूप देखै ॥ अब यहांपर सर्व उपाधियों का ही लय विवक्षित है चेतनका लय विवक्षित नहीं है॥ ५० ॥

मूलम् ॥

मकारमप्यात्मनिचिद्घनेपरे
विलापयेत् प्राज्ञमपीह कारणम् ॥
सोहंपरब्रह्म सदा विमुक्तिम
द्विज्ञानदृग्मुक्तउपाधितोमलः॥५१॥

पदच्छेदः ॥

मकारम् अपि आत्मनि चिद्घने परे विलापयेत् प्राज्ञम् अपि इह कार-

णम् सः अहम् परब्रह्म सदा विमुक्ति-
मत् विज्ञानदृक् मुक्तः उपाधितः अमलः॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
मकार कारणम्	मकार रूपी कारण को	सः	वह
		अमलः	निर्मल
अपि	और	विमुक्तिमत्	मुक्त
प्राज्ञम्	प्राज्ञको	विज्ञानदृक्	ज्ञानदृष्टि वाला
परे	परम	उपाधितः	उपाधि से
चिद्घने	घनचैतन्य विषे	मुक्तः	रहित
विलापयेत्	लीनकरै	अहम्	मैं
ततः	तत्पश्चात्	परब्रह्म	परब्रह्मरूप
एवम्	इसप्रकार	सदा	सर्वदाकाल
अनुभवम्	अनुभव को	अस्मि	स्थित हूं
कुर्यात्	करै कि		

भावार्थ॥

तत्पश्चात् मकार का वाच्यार्थ जो ईश्वररूप प्राज्ञ

है अर्थात् जो कारण है उसको भी शुद्ध चेतनरूप ब्रह्ममें लयकरै याने ब्रह्मरूपही करके उसको देखै, तदनन्तर उपाधि से रहित निर्मल विज्ञान स्वरूप नित्यमुक्त स्वरूप जो ब्रह्म है, सो मैंहींहूं॥ ऐसा चिन्तन करै॥ ५१॥

मूलम्॥

एवं सदा ज्ञातपरात्मभावनः
स्वानन्दतुष्टः परिविस्मृताखिलः।
आत्मातुनित्यात्मसुखप्रकाशितः
साक्षाद्विमुक्तोऽचलवारिसिंधुवत्५२

पदच्छेदः॥

एवम् सदा ज्ञातपरात्मभावनः स्वानन्दतुष्टः परिविस्मृताखिलः आत्मा तु नित्यात्मसुखः प्रकाशितः साक्षात् विमुक्तः अचलवारिसिंधुवत्॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
एवम्=	इसप्रकार	सदा=	निरन्तर

ज्ञातपरात्मभावनः =	ज्ञानी है परमात्मा की भावना जिसने	नित्यात्म सुखः =	अविनाशीआत्म सुख रूपहै जो ऐसा
		प्रकाशितः =	प्रकाशित हुआ
		आत्मा =	जीवात्मा
स्वानन्द तुष्टः =	अपने आनन्द में संतुष्ट है जो	अचलवारि सिंधुवत् =	अचलजल समुद्रवत्
परिविस्मृताखिलः =	संपूर्ण जगत विस्मृत होगया है जिसको	साक्षात् =	प्रत्यक्ष
		विमुक्तः =	मुक्त
		भवति =	होताहै

भावार्थ ॥

रामजी कहते हैं हे लक्ष्मण! पूर्वोक्तप्रकार करके जिसको आत्मभावना याने ब्रह्माकारवृत्ति उत्पन्नहुई है, ऐसा जो जीवन्मुक्त पुरुष है वह अपने स्वरूपानन्द करकेही आनन्दित होता है, विषयानन्द करके वह आनन्दित नहींहोताहै, क्योंकि विषयानन्द का परिणाम

दुःख है, और अनित्य है॥ प्र० ॥ विषयानन्द को भी ब्रह्मानन्द का अंश कहाहै और अंश अंशी का अभेद है, तब ब्रह्मानन्द का परिणाम भी दुःख होगा, और वह भी अनित्य होजावैगा॥ उ०॥ जैसे एकही आकाश घटाकाशादि अनेक भेदों को प्राप्त होता है, अर्थात् घटमठादि उपाधियों के भेद करके आकाश के भी अनेक भेद कहे जाते हैं, और उपाधियों से रहित जो आकाश है वह निर्भेद याने भेद से रहित कहा जाता है, और जैसे घटरूपी उपाधि के उत्पन्न होने से घटाकाश भी उत्पत्तिवाला कहा जाता है, "घटाकाशोऽउत्पन्नः घटाकाशोनष्टः" घटाकाश उत्पन्न हुआ है, घटाकाश नाशको प्राप्त हुआ है, ॥ ऐसा व्यवहार होता है, परन्तु आकाश न उत्पन्न होता है, और न नाशको प्राप्त होता है, किन्तु उपाधियोंकी ही उत्पत्ति होती है, और वही नाश होती हैं, और जो महाकाश है, तिसमें उत्पत्ति आदिक व्यवहारभी नहीं होता है, वह सदा ज्योंका त्यों हीं रहता है, और घटरूपी उपाधि करके परिच्छिन्नता को प्राप्त हुआ जो आकाश है, तिसमें धूलि धूमादिकों का भी प्रवेश होता है, और धूलि तथा धूम करके वह धूलित और धूमित भी कहा जाता है, अब देखिये कि घटाकाश महाकाश

का अंश होनेपर भी धूलि आदिक उपाधियों के सम्बन्ध से धूलिवाला धूमवाला कहा जाता है, और अनित्य भी कहा जाता है, जबतक घटरूप उपाधि बनी रहेगी तबतक उसमें पूर्वोक्त सर्वव्यवहार होवेंगे, तैसेही विषयानन्दभीविषयरूपी उपाधिकरकेपरिच्छिन्न अनित्य दुःखमिश्रित कहा जाता है, उपाधि के नाश होनेपर वह एक बुन्दरूपी जो ब्रह्मानन्द का विषयानन्द है, वह अंश ब्रह्मानन्द से अभेद हो जाता है, और अपने नित्य स्वरूप में स्थित होजाता है, और यदि तिस थोड़ेसे आनन्दमें ही मग्न रहेगा, तब महाआनन्द के प्राप्ति की इच्छा भी उसको नहीं होगी; इसलिये ऐसे तुच्छ आनन्दका त्याग करके महाआनन्दकी प्राप्ति के लिये यत्न करना उचित है, जैसे गंगाजल चमार के घटमें पड़ाहुआ अशुद्ध होजाता है और उलटा पापका जनक होजाता है, तैसे महानन्द का एक बुंदभी आनन्द, अन्तःकरण और विषयरूपी उपाधि में जाकर अशुद्ध और जन्ममरणरूपी दोष का जनक होजाता है, और विषय के नाश होनेपर नाश होजाताहै, परन्तु ये तीनों बातों के होनेपरभी महान् आनन्द में कोई अवगुणता नहीं होती है, वह सदा एकरस बनारहता है, इसी वास्ते विवेकी पुरुषों को

विषयानन्द का त्याग करना कहा है ॥ प्रश्न ॥ विषय तो स्वतः जड़ है, और अन्तःकरण भी जड़ है, इन दोनों में तो आनन्द है नहीं, क्योंकि जड़में आनन्द नहीं होता है, चेतन मेंही आनन्द होता है, तब फिर विषयानन्द को दोषरूप आप कैसे कहतेहैं ॥ उत्तर ॥ हम मानते हैं कि विषय में और अन्तःकरणमें आनन्द नहीं है, क्योंकि दोनों जड़ हैं, और दोनों में सामान्य चेतन भी बराबरहै, परन्तु अन्तःकरणरूपी स्वच्छउपाधि में विशेष चेतन है, और विषय में एक आकर्षणशक्ति चुम्बकपत्थर की तरह रहती है, जिसकाल में विषयकी पुरुष को सान्निधि होती है, उस काल में विषय अपनी आकर्षणशक्ति से पुरुषके मन को खैंचता है, और उसी क्षण अन्तःकरण से एक विषयाकारवृत्ति उत्पन्न होकर उस विषय पर जापड़ती है, वह वृत्तिभी एकस्वच्छजड़ द्रव्यहै, और उस वृत्ति में भी चेतन का प्रतिबिम्ब पड़ता है, इसलिये वृत्तिभी चेतनवत् प्रतीत होती है, जब वह वृत्ति विषय पर जाकर जैसा आकार कि विषय का होताहै, उतनेही आकारवाली होकर फैलजाती है, तब विषय में जो चेतन है, और वृत्ति में जो चेतन है, और अन्तःकरण में जो चेतन है, तीनों का अभेद होजाता है, और तभी

पुरुष को विषय प्रत्यक्ष होता है, अर्थात् विषय की सुरूपता कुरूपता का ज्ञान होता है, वही ज्ञान वृत्ति-जन्य कहाजाता है, जब सुन्दर विषय पर वृत्ति जाती है, वह वृत्ति उसकी सौन्दर्यता को देखकर और उसकी आकर्षणशक्ति के प्रभाव से एक क्षणमात्र उसपर स्थिर होजाती है, तभी उस वृत्तिमें चेतनका प्रतिबिम्ब भी स्थिर होजाता है, उस वृत्तिके स्थिर होने से सुख उत्पन्न होता है, वह सुख चेतनकाही है, अन्तःकरण और विषयका नहीं है,मूर्ख अज्ञानी उस आनन्द को विषयमें मानते हैं,वृत्तिके क्षणिक होनेसे वह भी क्षणिक है,विषय के वियोगसे वह सुख नष्ट होजाता है, इसीवास्ते वह विषय दुःख काही हेतु है, वास्तव में वह सुख नष्ट नहीं होता है, बल्कि वृत्तिके चलायमान होने से तिरोभाव होजाता है, और वृत्तिके अनित्य होने से अनित्य कहाजाता है, नित्य सुखस्वरूप आत्मा से भिन्न कहीं सुख नहीं है, मूर्ख जीव बाहर के विषयों में सुख मानकर जन्मते मरते हैं, वह आत्मा नित्य सुखरूप स्थित है, और अचल समुद्रकी तरह अपनी महिमा में सर्वदाकाल ज्योंका त्यों बना रहता है, उसमें कोई भी विकार नहीं होता है॥ ५२॥

मूलम् ॥

एवंसदाभ्यस्तसमाधियोगिनो
निवृत्तसर्वेन्द्रियगोचरस्यहि ॥
विनिर्जिताऽशेषरिपोरहंसदा
दृश्योभवेयंजितषड्गुणात्मनः ५३॥

पदच्छेदः

एवम् सदा अभ्यस्तसमाधियोगिनः निवृत्तसर्वेन्द्रियगोचरस्य हि विनिर्जिताशेषरिपोः अहम् सदा दृश्यः भवेयम् जितषड्गुणात्मनः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
एवम्	इसप्रकार		
सदा	निरन्तर		
अभ्यस्तसमाधियोगिनः	अभ्यास कियाहै समाधियोग जिसने और	निवृत्तसर्वेन्द्रियगोचरस्य	निवृत्त हुआहै सब इन्द्रियों काविषय जिसका

विनिर्जिताशेषरिपोः = जीता है संपूर्ण शत्रुओं को जिसने	अहम्=मैं
	सदा=सर्वदाकाल
	हि=निश्चयकरके
जितषड्गुणात्मनः = जीती हैं षट्ऊर्मी अन्तःकरण की जिसने ऐसे पुरुष को	दृश्यः=अपरोक्ष
	भवेयम्=होता हूं

भावार्थ ॥

हे लक्ष्मण ! पूर्वोक्तप्रकार से समाधि में अभ्यास किया है जिसने, और निवृत्त करदिये हैं सम्पूर्ण शब्दादिक विषय जिसने, अर्थात् सम्पूर्ण विषयों की तरफसे इन्द्रियों को हटाकर मनको अपने वश में कर लिया है जिसने, और कामादिक शत्रुओं को भी जीतलिया है जिसने, और सर्वज्ञ होना १ नित्यतृप्त रहना २ आनन्दस्वरूपहोना ३ स्वतन्त्रहोना ४ सर्वदा काल एकरसरहना ५ अनन्त होना इन छः गुणों से युक्त होकर शुद्धपरमात्मा को अपने वशमें कर लिया

है जिसनें याने मुझे साक्षात् करलिया है वही मेरा भक्त योगी है, उसीको मैं दिखाई देताहूं और इतर अभक्तोंको नहीं दिखाई देताहूं ॥ ५३ ॥

मूलम् ॥

ध्यात्वैवमात्मानमहर्निशंमुनि
स्तिष्ठेत्सदामुक्तसमस्तबन्धनः ॥
प्रारब्धमश्नन्नभिमानवर्जितो
मय्येवसाक्षात्प्रविलीयतेऽन्ततः ॥ ५४ ॥

पदच्छेदः ॥

ध्यात्वा एवम् आत्मानम् अहर्निशम् मुनिः तिष्ठेत् सदा मुक्तसमस्तबन्धनः प्रारब्धम् अश्नन् अभिमानवर्जितः मयि एव साक्षात् प्रविलीयते अन्ततः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
मुक्त समस्त बन्धनः	= छूटगया है सब बन्धनों से जो ऐसा जब	मुनिः	= मननशील वाला मुमुक्षु
		एवम्	= इसप्रकार

अहर्निशम्=दिनरात्रि	प्रारब्धम् = प्रारब्धको
आत्मानम्=आत्माको	अश्नन् = भोगताहुआ
ध्यात्वा = ध्यानकरके	अन्ततः = परिणाममें
सदा = सर्वदा	मयिएव = मेरेही विषे
तिष्ठेत् = स्थिरहोवै	सः = वह
तु = तब	साक्षात् = अवश्य
अभिमान वर्जितः = { अभिमान रहित होकर	प्रविलीयते=लीनहोताहै

भावार्थ ॥

श्रीरामजी लक्ष्मणजी से कहते हैं हे लक्ष्मण ! जब मुनि पूर्वोक्तप्रकार करके अहर्निश आत्मा का ध्यानकरता हुआ और सर्वकाल सम्पूर्ण बन्धनों से रहित हुआ २ प्रारब्धअनुसार ते भोजन आदिकों को करता हुआ अभिमानसे रहित होकर स्थितहोवेगा तब साक्षात् मेरेमेंही लयको प्राप्त होवेगा इसमें संशयनहीं है ॥ ५२ ॥

मूलम् ॥

आदौ च मध्ये च तथैवचान्ते
भवं विदित्वा भयशोककारणम् ॥

हित्वासमस्तंविधिवादचोदितं
भजेत्स्वमात्मानमथाखिलात्मनाम् ५५

पदच्छेदः॥

आदौ च मध्ये च तथा एव च अन्ते भवम् विदित्वा भयशोककारणम् हित्वा समस्तम् विधिवादचोदितम् भजेत् स्वम् आत्मानम् अथ अखिलात्मनाम्॥

अन्वयः	शब्दार्थ
आदौ	आदि में
मध्ये	मध्यमें
च	और
तथाएव	तैसेही
अन्ते	अन्त में
भवम्	संसारको
भयशोककारणम्	भयशोक का कारण
विदित्वा	जानकरके
च	और
विधिवादचोदितम्	वेदके विधिवाक्यों करके कहे हुये
समस्तम्	संपूर्णकामुक कर्मों को
हित्वा	त्यागके

अथ=फिर	आत्मानम्=चैतन्यआ-
अखिलात्मनाम् = सबआत्मोंकाआत्मा	त्माको
स्वयम्=अपने	भजेत् = भजै

भावार्थ ॥

अब रामजी लक्ष्मण के प्रति सारभूत वार्त्ता को कहते हैं ॥ हे लक्ष्मण ! पुरुष को ऐसा करनाचाहिये ॥ आदिमें मध्यमें और अन्तमें स्त्री पुत्रादिरूप संसारको भय और शोकका कारण जानकर त्याग देवै, और जितने वेदमें विधिवाक्यहैं जैसे "स्वर्ग कामोयजेत" स्वर्गकी प्राप्तिकी कामना वाला यज्ञ को करै "अक्षय्यंहवैचातुर्मास्ययाजिनःसुकृतंभवति" चातुर्मास्यसंज्ञक यज्ञके करनेवालेको अक्षय पुण्य होता है ॥ अपुत्रस्यगतिर्नास्ति स्वर्गेनचनेहच ॥ येनकेनाप्युपायेन कार्य्यंजन्मसुतस्यवै ॥ १ ॥ जिसके पुत्रनहींहै तिसकी गति स्वर्गलोकमें और इसलोकमें नहींहोती है, इसलिये येनकेन उपाय करके पुत्रका जन्म याने उत्पत्ति करनी चाहिये ॥ १ ॥ इत्यादि जो अर्थवादरूपादिक वाक्य हैं, इन सबका त्याग करके केवल आत्माकाही चिन्तनकरै ॥ प्रश्न ॥ अर्थवाद शब्दका

अर्थ क्या है ॥ उत्तर ॥ स्तुतिनिन्दाबोधकवाक्य मर्थवादः ॥ जो वाक्य स्तुति वा निन्दा को बोधन करै उसका नाम अर्थवादवाक्य है, सो पूर्व कहे जो श्रुति वाक्य हैं सो अर्थवादरूप हैं, क्योंकि केवल स्वर्गकी स्तुति में उनका तात्पर्य है, यह जो कहाहै कि चातुर्मासंज्ञक यज्ञकरनेवाले को अक्षय पुण्य होता है सो नहीं है, क्योंकि अक्षय उसको कहते हैं जिसका क्षय याने नाश कदापि न हो ऐसा तो कोई भी कर्मजन्य फल नहीं है, क्योंकि ऐसा नियम है कि ॥ यत्कृतकंतदनित्यम् ॥ जो जो कार्य्य होता है सो सब अनित्य होता है, इसीसे वह जानाजाताहै कि ये सब अर्थवादवाक्य हैं, और यह जो कहा है कि जिसके पुत्र नहीं है उसकी गति नहीं होती है इसमें हम पूछतेहैं गतिशब्दका अर्थ स्वर्ग का सुख है वा इस लोकका सुखहै अथवा मोक्ष है ॥ यदि स्वर्गकीप्राप्ति पुत्र करके मानोगे तब जितने कि नीचजाति वाले भङ्गी चमार हैं और कूकर शूकर आदिकहैं इन सबको स्वर्गकी प्राप्ति होनीचाहिये, क्योंकि इनके बहुत से पुत्र हैं, ऐसा तो कहींभी लेख नहीं मिलताहै कि केवल पुत्र के उत्पन्नकरनेसेही स्वर्ग मिलजावै, और इसलोकका सुखभी पुत्र करके नहीं मिलताहै क्योंकि

पुत्रवालों को पुत्रके होनेपरभी इसीलोकमें बड़ाभारी कष्ट होता है, और पुत्र करके मोक्ष नहीं बनता है, यदि पुत्र करकेही मोक्ष होवै तव सब नीचजातिवाले और कूकर शूकरादिक भी मुक्त होजाने चाहिये, पर ऐसा हो तातो नहीं है, इसीसे यह साबित होता है कि ये सब अर्थवादवाक्य हैं, इन अर्थवादवाक्योंको त्याग करके केवल आत्माकाही चिन्तन करनेवाला संसार बन्धन से छूटजाता है ॥ ५५ ॥

मूलम् ॥

आत्मन्यभेदेनविभावयन्निदं
जानात्यभेदेनमयाऽऽत्मनस्तदा ॥
यथाजलंवारिनिधौयथापयः
क्षीरेवियद्व्योम्न्यनिलेयथानिलः ५६

पदच्छेदः ॥

आत्मनि अभेदेन विभावयन् इदम् जानाति अभेदेन मया आत्मनः तदा यथा जलम् वारिनिधौ यथा पयः क्षीरे वियत् व्योम्नि अनिले यथा अनिलः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
यदा	जब
पुरुषः	पुरुष
इदम्	इसजगत्को
अभेदेन	अभेदकरके
आत्मनि	अपनेआपमें
विभावयन्	विचारवान्
भवति	होता है
तदा	तब
आत्मनः	अपने आपसे
मया	मेरेसाथ
अभेदेन	अभेदकरके
जानाति	जानता है
यथा	जैसे
वारिनिधौ	समुद्रमें
जलम्	जल
क्षीरे	दूधमें
पयः	दूध
व्योम्नि	आकाशमें
वियत्	आकाश
अनिले	वायु में
अनिलः	वायु
अभिन्नोभवति	अभेद होता है

भावार्थ ॥

रामजी कहते हैं हे लक्ष्मण ! पुरुष अपने आत्मा को ईश्वरब्रह्म में अभेदभावना करताहुआ ब्रह्मरूप ही होजाता है ॥ पश्चात् प्राणीमात्रको अपने आत्मा

में अभेदभावना करने से वह सर्वरूपही होजाता है, जैसे नदियों का जल समुद्र में जाकर समुद्ररूपही होजाताहै,जैसे दूधमें जल मिलकर दूधरूप होजाता है. जैसे घटाकाश महाकाश में मिलकर महाकाश रूपही होजाता है.जैसे व्यजन याने पंखाका पवन बड़े पवन से मिलकर तद्रूपही होजाता है, इसीतरह जीवात्माभी अभेदभावना करके परमात्मारूपही होजाता है, और ऐसेही श्रुतिभी कहती है ॥ यथा नद्यःस्यन्दमानाःसमुद्रेऽस्तंगच्छन्तिनामरूपेविहाय। तथाविद्वान्नामरूपाद्विमुक्तःपरात्परंपुरुषमुपैतिदिव्यम् ॥ जैसे सब नदियां चलतीहुई समुद्र में जाकर अपने गंगादिक नामोंको त्यागकर समुद्ररूप होजाती हैं, तैसे विद्वान् भी नामरूप से रहित होकर प्रकृति से भी परे जो दिव्यपुरुष है. उसके साथ एकताको प्राप्तहोकर वही रूप होजाता है ॥ ५६ ॥

मूलम् ॥

इत्थंयदीक्षेतहिलोकसंस्थितो

जगन्मृषैवेति विभावयन्मुनिः ॥

निराकृतत्वाच्छ्रुतियुक्तिमानतो

यथेन्दुभेदोदिशिदिग्भ्रमादयः ५७

पदच्छेदः ॥

इत्थम् यदि ईक्षेत हि लोकसंस्थितः जगत् मृषा एव इति विभावयन् मुनिः निराकृतत्वात् श्रुतियुक्तिमानतः यथा इन्दुभेदः दिशि दिग्भ्रमादयः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
यथा	जैसे
इन्दुभेदः	एक चन्द्रमा में दो चन्द्रमा
च	और
दिशि	एकदिशा में
दिग्भ्रमादयः	अन्यदिशों की भ्रान्ति
भवति	होती है
इत्थम्	तैसेही

अन्वयः	शब्दार्थ
लोकसंस्थितः	संसार में स्थितहोताहुआ
मुनिः	बुद्धिमान् पुरुष
श्रुतियुक्तिमानतः	श्रुतिप्रमाणोंद्वारा
निराकृतत्वात्	निराकरण करनेसे
यदि	जब

जगत्=जगत् को	ईक्षेत=देखै
मृषाएव=मिथ्याही	तदा=तब
विभावयन्=भासता हुआ	कृतार्थः=कृतार्थ
	भवति=होताहै

भावार्थ ॥

रामजी कहते हैं हे लक्ष्मण! लोकमें स्थितहुआ २ जो मुनिहै सो लौकिक व्यवहारको करताहुआ भी जीवन्मुक्तही कहाजाता है, क्योंकि श्रुतियुक्ति और अनुभव करके दूर होगया है भेद भ्रम जिसका और निश्चय करलियाहै जीवब्रह्मका अभेद जिसने और दूर होगई है जगत् में सत्यत्वबुद्धि जिसकी ऐसा जो विद्वान्है वह संसारमें असंगहोकर विचरता है, और जैसे एक चन्द्र में दो चन्द्रमा का भ्रम एक चन्द्रमा के ज्ञान से दूर होजाता है, पूर्वदिशामें पश्चिमदिशा का भ्रम पूर्वदिशा के ज्ञान से दूरहोजाता है, और नौका के चलने से किनारे के वृक्षों में चलने का भ्रम यथार्थज्ञानसे दूरहोजाता है, तैसेही आत्मा के अज्ञान करके जो जगद्भ्रम होरहा है, वहभी आत्मा के ज्ञान करकेही दूर होजाता है ॥ ५७ ॥

मूलम् ॥

यावन्नपश्येदखिलंमदात्मकं
तावन्मदाराधनतत्परो भवेत् ॥
श्रद्धालुरित्यूर्जितभक्तिलक्षणो
यस्तस्यदृश्योहमहर्निशंहृदि ५८॥

पदच्छेदः ॥

यावत् न पश्येत् अखिलम् मदात्मकम् तावत् मदाराधनतत्परः भवेत् श्रद्धालुः इति ऊर्जितभक्तिलक्षणः यः तस्य दृश्यः अहम् अहर्निशम् हृदि ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यावत्	=जबतक		मेरेसगुण
अखिलम्	=सम्पूर्ण जगत्को	मदाराधनतत्परः	=आराधनमें तत्पर रहनेवालाहो
मदात्मकम्	=मेरास्वरूप	यः	=जो
नपश्येत्	=न देखै	श्रद्धालुः	=श्रद्धावान् पुरुष
तावत्	=तबतक		

इति=इसप्रकार	हृदि=हृदयविषे
ऊर्जित भक्तिल क्षणः = उत्कृष्टभक्ति लक्षण वाला है	अहम्=मैं
	अहर्निशम्=दिनरात
	दृश्यः=दृश्यहूं याने अपरोक्षहूं
तस्य=उसके	

भावार्थ ॥

श्रीरामजी लक्ष्मणजीकेप्रति कहतेहैं ॥ हे लक्ष्मण! विवेकी पुरुष यावत्पर्यन्त सम्पूर्ण जगत् को मेराही रूपकरके न देखै तावत्पर्यन्त मेरी आराधना करने में तत्पर रहै अर्थात् श्रद्धा और दृढ़ विश्वास करके युक्त हुआ २ मेरी प्रेमाभक्ति में आरूढ़ होवै जब इस प्रकार चित्तको मेरेमेंही लगाता है तब उसके हृदय में मेरा प्रादुर्भाव होजाता है अर्थात् मैं उसके हृदय में अपने स्वरूप को प्रकाशताहूं ॥ ५८ ॥

मूलम् ॥

रहस्यमेतच्छ्रुतिसारसंग्रहं
मया विनिश्चित्य तवोदितं प्रियम् ॥
यस्त्वेतदालोचयतीह बुद्धिमान्
समुच्यते पातकराशिभिः क्षणात् ५९॥

पदच्छेदः॥

रहस्यम् एतत् श्रुतिसारसंग्रहम् मया विनिश्चित्य तव उदितम् प्रियम् यः तु एतत् आलोचयति इह बुद्धिमान् सः मुच्यते पातकराशिभिः क्षणात्॥

अन्वयः	शब्दार्थ
एतत्	यह
प्रियम्	प्रिय
रहस्यम्	गोप्य
श्रुतिसार संग्रहम्	श्रुतिसार संग्रह याने गीता
तव	तुम्हारेप्रति
मया	मुझ करके
विनिश्चित्य	निश्चय पूर्वक
उदितम्	कहागयाहै
यः	जो
बुद्धिमान्	बुद्धिमान् पुरुष
एतत्	इसको
आलोचयति	देखता है
सः	वह
इह	इस संसार विषे
पातक राशिभिः	सब पापों से
क्षणात्	क्षणमात्रमें
मुच्यते	मुक्तहोजाताहै

भावार्थ ॥

रामजी कहते हैं हे लक्ष्मण ! हे प्रिय ! यह जो सम्पूर्ण श्रुतियों का सारभूत संग्रहरूप रहस्य याने अतिगोपनीय जो ज्ञान है, इसको मैंने निश्चय करके तुम्हारे प्रति कहा है,इसको जो बुद्धिमान् पुरुष विचार करेगा वह शीघ्रही सम्पूर्ण पापों से क्षणमात्र में छूट जावेगा ॥ ५९ ॥

मूलम् ॥

भ्रातर्यदीदंपरिदृश्यतेजगन्
मायैव सर्वं परिहृत्य चेतसा ॥
मद्भावनाभावितशुद्धमानसः
सुखीभवानन्दमयोनिरामयः॥६०॥

पदच्छेदः ॥

भ्रातः यत् इदम् परिदृश्यते जगत् माया एव सर्वम् परिहृत्य चेतसा मद्भावनाभावितशुद्धमानसः सुखी भव आनन्दमयः निरामयः॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
भ्रातः	= हे भ्राता !	आनन्दमयः	= आनन्द मय
इदम्	= यह	निरामयः	= निर्दोष रूप
यत्	= जो	सुखी	= सुखी
जगत्	= संसार	भव	= हो
परिदृश्यते	= दृश्यआवताहै	यतः	= क्योंकि
तत्	= सो	मद्भाव नाभावित शुद्धमान सः	= मेरीभावना करके युक्त तुमशुद्धमनवाले हो
मायाएव	= मायाही है		
सर्वम्	= इस सबको		
चेतसा	= चित्तसे		
परिहृत्य	= त्यागकरके		

भावार्थ ॥

श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजी के प्रति कहते हैं कि हे भ्राता ! जितना कुछ जगत् दिखाई देता है, वह सब मायामात्रही है ऐसा निश्चय करके और चित्तसे उसको मिथ्या जानकर मेरे में जो शुद्धचित्त-वाला भावना करता है, वह सम्पूर्ण दुःखों से रहित

होजाता है; तत्पश्चात परमानन्दस्वरूप आत्मा को प्राप्त होता है ॥ ६० ॥

मूलम् ॥

यः सेवते मामगुणं गुणात्परं
हृदा कदा वा यदि वा गुणात्मकम् ॥
सोयंस्वपादाञ्चितरेणुभिःस्पृशन्
पुनाति लोकत्रितयंयथारविः ६१ ॥

पदच्छेदः ॥

यः सेवते माम् अगुणम् गुणात्परम् हृदा कदा वा यदि वा गुणात्मकम् सः अयम् स्वपादाञ्चितरेणुभिः स्पृशन् पुनाति लोकत्रितयम् यथा रविः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यः	जो मुमुक्षु	माम्	मुझको
गुणात्परम्	निर्गुण	कदावा	कभी भी
यदिवा	अथवा	हृदा	अन्तः करणसे
गुणात्मकम्	सगुण रूप	सेवते	सेवता है

सः = सोई
अयम् = यह पुरुष
स्वपादाब्जितरेणुभिः = अपने चरणोंकी पूजित रजसे
स्पृशन् = स्पर्श करता हुआ
यथा रविः = सूर्यकी तरह
लोकत्रितयम् = तीनों लोकोंको
पुनाति = पवित्र करता है

भावार्थ ॥

रामजी कहते हैं हे लक्ष्मण ! जो पुरुष पुण्योंकी विपाक दशा में याने जब पुण्यों के कर्म फल देने को उदय होते हैं उस समयमें मेरी निर्गुण मूर्त्ति की अथवा सगुण मूर्त्ति की अर्थात् माया के गुणों से परे सच्चिदानन्दरूप मेरी मूर्त्तिकी या सर्वज्ञत्वादि गुणों के साहित मायाविशिष्ट मेरी मूर्त्तिकी उपासना करता है, वह मेराही स्वरूप होजाता है, वही पुरुष अपने चरणों की धूलि करके तीनोंलोकों को पवित्र करता है ॥ ६१ ॥

मूलम् ॥

विज्ञानमेतदखिलंश्रुतिसारमेकं
वेदान्तवेद्यचरणेनमयैवगीतम् ॥

यःश्रद्धयापरिपठेद्गुरुभक्तियुक्तो
मद्रूपमेतियदिमद्वचनेषुभक्तिः ६२॥

पदच्छेदः॥

विज्ञानम् एतत् अखिलम् श्रुतिसारम् एकम् वेदान्तवेद्यचरणेन मया एव गीतम् यः श्रद्धया परिपठेत् गुरुभक्तियुक्तः मद्रूपम् एति यदि मद्वचनेषु भक्तिः॥

अन्वयः	शब्दार्थ
वेदांतवेद्यचरणेन	वेदांतकरके जानने योग्य हैं चरण जिसका ऐसे
मयाएव	मुझकरके
एतत्	यह
अखिलम्	सम्पूर्ण
श्रुतिसारम्	वेदकासार
एकम्	एक
विज्ञानम्	विज्ञान रूप
गीतम्	कहागयाहै
यः	जो
गुरुभक्तियुक्तः	गुरुकीभक्तिसेयुक्त हुआ पुरुष
श्रद्धया	श्रद्धापूर्वक इसको

यदि = जब	स्यात् = होगी
परिपठेत् = पढ़ेगा	तर्हि = तबहीं
च = और	सः = वह
मद्वचनेषु=मेरेवचनों में	मद्रूपम् = मेरेरूपको
भक्तिः = भक्ति	प्रति = प्राप्तहोगा

भावार्थ॥

श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणसे कहते हैं हे लक्ष्मण! सम्पूर्ण श्रुतियोंका सार जो एक अद्वितीय ब्रह्मका ज्ञान है सोई मैंने तुम्हारे प्रति कहाहै,इसको जो पुरुष श्रद्धा करके धारणकरताहै या गुरुभक्ति करके नित्यही इसका पाठ करता है, वह मेरेही स्वरूपको प्राप्त होताहै, इसमें संशय नहीं है॥ ६२॥

इति श्रीरामगीतासमाप्तिमगा

दितिशिवम्

जालिमसिंह हेडपोस्टमास्टर

लखनऊ

हे मन! हे संसार का करनेहारा! हे सुख दुःखका भो-क्ता! हे शुभाशुभकर्मोंका कर्ता! अब शान्त हो, तूने श्री-रामलक्ष्मण के अमृतरूपी संवादको श्रवण किया है, तुच्छ विषयानन्द को त्यागकर, श्रोत्रिय ब्रह्मविद् आचार्यकी कृपा करके महद् ब्रह्मानन्द को प्राप्तभया है, हे मन! विचार कर कितना दुःख तूने उठाया है, असंख्य बार जन्म मरणको प्राप्त हुआहै, असंख्य बार नरक स्वर्ग के दुःखोंको भोगाहै, असंख्य बार संसारके कण्टकों को सहाहै, अहर्निश दुःखों से भागता रहा है, और सुखोंके लिये दौड़ता फिराहै, पर कभी तेरी संतु-ष्टता न भई, अनेक संकल्प तू करताही रहा, सृष्टिके आदिसे अभीतक तेरेमें चंचलता न दूर होनेके कारण सदा विकल रहा, कारण इसका केवल यहीथा कि तेरी पूरीपूरी श्रद्धा वेद शास्त्रों और श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचा-र्यों में न थी, सदा कामुक और निषिद्धकर्मों को तुच्छ विषयानन्द के लिये करता रहा, कभी तूने उस परम आनन्दस्वरूप आत्मा के तरफ मुँह न फेरा जो तेरे नजदीक निरन्तर स्थितहै, हे मन! तू अभीतक नगरक-

ताथा कि तेरे स्थानसे बाहर विषयोंमें आनन्दहै, अब तुझको मालूम हुआ कि कहां आनन्दहै, तू महानन्द समुद्र के निकट स्थित है, आगे मत दौर, पीछे मुँह फेरकर देख, और समीपवर्ती आनन्द का स्वादले, हे मन! अब तेरे संकल्प विकल्पकी अवधि होचुकी ॥ उत्तर ॥ हे महाराज जीवआत्मा! आप यथार्थ कहते हैं, मैं अपने निकट महासमुद्ररूपी नित्यानन्दको श्री-महाराज राम लक्ष्मणके संवाद के श्रवणद्वारा प्राप्त भयाहूं, हा! इतने चिरकालतक मैं विषयों में पड़कर अनेकप्रकार का दुःख उठाया, और आपभी अपनेको भूलकर मेरे संग दुःख उठातेरहे, अब मैं संसारसे मुँह मोड़ताहूं, और ब्रह्मानन्दमें मग्न होताहूं, देखो "ॐसर्वं खल्विदं ब्रह्म, नेह नानास्ति किञ्चन" ॐतत्सत्, ॐ तत्सत्, ॐतत्सत् ॥

आत्माकी अभेदता का निरूपण चार प्रकरणों में अच्छी तरह से किया है ॥

कठवल्लीउपनिषद् भाषाटीकासहित ≈)॥

पंचोली यमुनाशंकर नागर ब्राह्मण की भाषा टीका सहित-इसमें भी ऊपर लिखेहुये के अनुसार भावार्थ स्पष्ट कियागया और समझने की सुगमताके लिये गुरुशिष्यसंवाद पूर्वक पूर्ण ज्ञान लखाया है ॥

मुण्डकउपनिषद् भाषाटीकासहित ≈)॥

पंचोली यमुनाशंकर नागर ब्राह्मण की भाषा टीका सहित-जिसमें वादी प्रतिवादीके प्रश्नोत्तरसे ब्रह्मका निर्णय व जगदुत्पत्ति व प्रत्येक अन्नादिका सम्भव व अग्निहोत्रादि क्रियाओं का विधान मन्त्रोंद्वारा वर्णितहै ॥

तैत्तिरीयोपनिषद् भाषाटीकासहित ।-)॥

पंचोली यमुनाशंकर नागर ब्राह्मण की भाषा टीका सहित-जिसमें तैत्तिरीय शाखा के प्रकट होने का उदाहरण और स्वरमात्रा व वर्णों के उच्चारण की शिक्षा का नियम व वर्णों के सम्बन्धरूप संहिताकी उपासना व बुद्धि व लक्ष्मी की कामनावाले पुरुषोंके अर्थसाधन जप और हवनादि की क्रियायें वर्णित हैं ॥

ऐतरेयोपनिषद् भाषाटीकासहित ≈)॥

पंचोली यमुनाशंकर नागर ब्राह्मण की भाषा टीका सहित-जिसमें [illegible] निरूपण और [illegible] की उपासना की व्याख्या व संध्यादि आश्रमों के लक्षण व धर्म [illegible] वर्णितहैं ॥

उपनिषद्सार -)॥ पु०

मुण्डक, मांडूक्य, तैत्तरीय, ऐतरेय, श्वेताश्वतर, ईशा- वास्य, केन, कठ, प्रश्न, छांदोग्य, वृहदारण्यक, कौषीतकि, ब्राह्मण और मैत्री की भाषाटीका राजा शिवप्रसाद सितारे-हिन्द ने रचनाकर अपने पुत्र पौत्र मित्र बान्धव योग्य अधि-कारियों के निमित्त छपवाया है ॥

निम्नलिखित पुस्तकें भी हेडपोस्टमास्टर लखनऊ बाबू जालिमसिंह कृत भाषाटीकासहित इस यन्त्रालय में फ़रोख्त होती हैं ॥

(१)	माण्डूक्योपनिषद् भाषा टीका	-)॥ पु०
(२)	केनोपनिषद् भाषा टीका	=) पु०
(३)	ईशावास्यउपनिषद् भाषा टीका	-)॥ पु०
(४)	ऐतरेयोपनिषद् भाषा टीका	≡) पु०
(५)	प्रश्नोपनिषद् भाषा टीका	।-) पु०
(६)	मुण्डकउपनिषद् भाषा टीका	।-) पु०
(७)	तैत्तिरीयोपनिषद् भाषा टीका	॥) पु०
(८)	कठवल्लीउपनिषद् भाषा टीका	।=) पु०
	भगवद्गीता भाषा टीका १ भाग	१=) पु०
	तथा २ भाग	१)
	अष्टावक्रगीता भाषा टीका	१।)